SAMRAT ASHOK
BY
BIKSHU SAWANGI MENGAKER

सम्राट अशोक

भिक्षु सावंगी मेधंकर





प्रथम संस्करण : सितम्बर 1972 ● भाद्र 1894
द्वितीय संस्करण : जुलाई 1982 ● आषाढ़ 1904

मूल्य : रु० 7.00

निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित।

विक्रय केन्द्र : प्रकाशन विभाग

- सुपर बाजार (दूसरी मंजिल), कनाट सर्कस, नई दिल्ली 110001
- कामर्स हाउस, करीमभाई रोड, बलार्ड पीयर, बम्बई-400038
- 8-एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता-700069
- एल० एल० ए० आडीटोरियम 796, अन्नासलै, मद्रास-600002
- बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना-800004
- त्रिवेन्द्रम गवर्नमेंट प्रेस, प्रेस रोड, त्रिवेंद्रम-695001
- 10 वीं, स्टेशन रोड, लखनऊ-226004

प्रबंधक, भारत सरकार मुद्रणालय, नासिक द्वारा मुद्रित।

भारतीय इतिहास के निर्माता ग्रंथमाला

[प्रथम संस्करण की भूमिका]

प्रकाशन विभाग 'आधुनिक भारत के निर्माता', 'भारत के गौरव' और 'भारत के अमर चरित्र' ग्रंथमाला निकाल चुका है। अब 'भारतीय इतिहास के निर्माता' ग्रंथमाला प्रस्तुत की जा रही है। इस माला में छत्रपति शिवाजी, रानी लक्ष्मीबाई, रणजीत सिंह, राणा प्रताप, अकबर, कश्मीर के बड़शाह आदि के प्रामाणिक जीवन चरित्र प्रकाशित किए जाएंगे ।

इन पुस्तकों में इन ऐतिहासिक व्यक्तियों के व्यक्तित्व और कार्य को रोचक ढंग से प्रस्तुत करने की कोशिश की जाएगी, जिससे पाठकों को उनके कार्य के महत्व का ज्ञान हो और उनके समय के इतिहास की भी जानकारी हो ।

इस समय भिक्षु सावंगी मेधंकर द्वारा लिखित सम्राट अशोक की जीवनी प्रस्तुत की जा रही है। प्रसिद्ध अंग्रेज इतिहास लेखक श्री एच० जी० वेल्स ने अपनी 'संसार के इतिहास की रूपरेखा' नाम की पुस्तक में लिखा है–'अशोक का नाम बड़े-बड़े और विभिन्न उपाधियों वाले सहस्रों शासकों में, जिनका वर्णन इतिहास में आता है, सितारे की तरह चमकता है। वोल्गा से जापान तक आज भी उसका नाम अत्यंत सम्मान के साथ लिया जाता है।'

सम्राट अशोक इतिहास का अकेला शासक था जिसके पास बहुत बड़ी सेना, भरा हुआ खज़ाना और अपार साधन थे जिसके बल पर वह चाहता तो पूरे एशिया को जीत लेता, परन्तु उसकी विशेषता यह है कि उसने अपनी शक्ति लोगों की भलाई करने में लगाई, खून बहाने में नहीं। इस लिहाज से उसका स्थान सिकंदर और नेपोलियन से ऊंचा है, जिन्होंने अपनी शक्ति दूसरे देशों को रौंदने में लगाई थी। आज से 2000 वर्ष पहले अशोक ने इस देश पर राज्य किया था। उसके लगाए हुए खम्भे और शिलालेख आज भी हमें उसका सन्देश सुनाते हैं। अशोक के आदर्शों ने हमारे स्वतंत्र देश के पहले प्रधानमंत्री पंडित जवाहर-लाल नेहरू पर बहुत प्रभाव डाला था। वह अशोक की तरह शान्ति के पुजारी थे ।

अशोक की यह जीवनी बालकों के लिए लिखी गई है और लेखक ने इसमें पुरानी किताबों में पाई जाने वाली अशोक के संबंध की रोचक कहानियां दी हैं जिससे उसके चरित्र की बड़ी दिलचस्प झांकी मिलती है ।

आशा है कि हमारे बच्चे अशोक के चरित्र से प्रेरणा पाएंगे ।

विषय सूची

2—572 एम० ऑफ आय० अंण्ड बी०/एण्डी/ 81

1 पाटलिपुत्र की कथा

आप में से बहुतों ने रेलगाड़ी या हवाई जहाज द्वारा अपने भारत की यात्रा की होगी। सम्भव है आप में से किसी ने विदेश की सैर भी की हो। किन्तु जिस प्रकार की यात्रा पर अब हम निकलने वाले हैं, उस प्रकार की यात्रा इस से पहले आपने नहीं की होगी। इस यात्रा में हम लगभग दो हजार पांच सौ वर्ष पुराने भारत की सैर करेंगे।

हम सर्वप्रथम महान् वैभवशाली पाटलिपुत्र नगर को देखेंगे। यह प्राचीन नगर अब नहीं है। उसकी टूटी-फूटी दीवारें और नींव तथा इसी प्रकार की चीजें मिलेंगी। हां, उसी पाटलिपुत्र नगर के चारों ओर अब पटना नगर है।

आपने राजगृह या राजगिर का नाम तो सुना ही होगा। यह बिहार राज्य की राजधानी पटना से बहुत दूर नहीं है। पुरातन राजगृह बड़ा ही वैभवशाली नगर था। ढाई हजार वर्ष पूर्व वहां मगध राज्य की राजधानी थी। आज भारत में कई राज्य हैं। उनकी अलग-अलग राजधानियां तथा सरकारें हैं। किन्तु वे सब दिल्ली की केंद्रीय सरकार के अनुशासन में हैं। दो हजार पांच सौ वर्ष पहले भी भारत में सोलह महा जनपद या राज्य थे। पर वे सब स्वतन्त्र राज्य थे। उनमें मगध जनपद बड़ा शक्तिशाली था।

उस समय के मगध जनपद का राजा बिंबिसार भगवान बुद्ध (इ०पू० 563 से 483) का समकालीन था। दोनों एक दूसरे से सुपरिचित थे। बिंबिसार जब वृद्ध हुआ तो उसके पुत्र अजातशत्रु ने ही पिता की हत्या कर डाली और स्वयं राजगद्दी पर बैठ गया।

मगध की राजधानी राजगृह के पास ही गंगा और सोन नदी के संगम पर पाटलिग्राम नाम का एक गांव था। गंगा के उत्तर में प्रसिद्ध वज्जि जनपद था। इस वज्जि संघ में अनेक शक्तिशाली गणराज्य सम्मिलित थे। ये पंचायती राज्य थे। इनमें कोई राजा न होता था। राजा अजातशत्रु वज्जि संघ को अपने मगध राज्य में मिलाना चाहता था। इसलिये उसका प्रधानमन्त्री पाटलिग्राम में किलेबंदी करने में लगा हुआ था। उसी समय राजगृह से कुशीनगर जाते समय भगवान बुद्ध ने पाटलिग्राम में विश्राम किया था।

राजा अजातशत्रु ने पाटलिपुत्र नगर की नींव डाली थी, किन्तु उसे पूरा न कर सका। उसके पुत्र उदाईभद्र ने भी वैसे ही अजातशत्रु की हत्या कर डाली, जैसे अजातशत्रु

ने अपने पिता बिंबिसार की थी। उसके बाद ही पाटलिपुत्र नगर का निर्माण शुरू हुआ। उदाई ने पाटलिपुत्र को विशाल और शानदार नगर बनाया और राजगृह को छोड़ कर उसे ही मगध राज्य की राजधानी बनाया। इसी कारण राजा उदाईभद्र को ही पाटलिपुत्र नगर का संस्थापक कहा जाता है।

आप जानना चाहेंगे कि इस नगर का नाम पाटलिपुत्र क्यों पड़ा! कहा जाता है कि जिस जगह इसकी स्थापना हुई वहां सुन्दर लाल फूलों वाला पाटलि का वृक्ष था। उसी के कारण इस नगर का नाम पाटलिपुत्र पड़ा। उन्हीं सुन्दर फूलों के कारण यह कुसुमपुर और पुष्पपुर भी कहलाया।

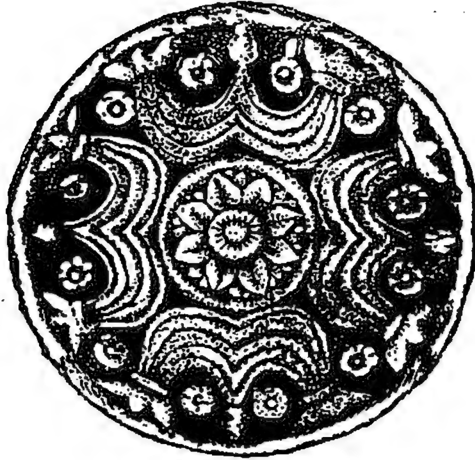
भारत में बहुत पहले आर्य लोग पश्चिम दिशा से आगे फैल रहे थे। वे बहुत छोटे-छोटे भागों में बंटे हुए थे जिन्हें 'जन' कहते थे। जन को हम कबीला कह सकते है। जिन प्रदेशों में वे 'जन' बसे उन प्रदेशों को वे 'जनपद' के नाम से जानते थे। प्रत्येक जनपद में प्राय: एक जन या एक ही कबीले के लोग रहते थे। जनों के नाम पर ही उनके जनपदों के नाम पड़े थे। जैसे अंग, मगध, काशी, कोशल, कुरु, पांचाल आदि।

इन जनपदों में शासन की प्रणाली अनेक तरह की थी। एक 'जन' एक बड़े परिवार के समान था। जैसे परिवार में सबसे वृद्ध आदमी ही उसका मुखिया या कर्ता होता हैं, उसी प्रकार सबसे वृद्ध और अनुभवी आदमी को ही जनपद का शासक चुना जाता था। उसको 'राजा' नहीं गणपति कहते थे। वह जन की या जनपद की संपत्ति की रक्षा करता था। सभा में उस 'जन' या गण के सदस्य जो राय देते थे, उसी के अनुसार कार्य करता था।

भारत में इन प्राचीन जनपदों की राज्य व्यवस्था दो प्रकार की थी। एक गणतंत्र और दूसरी राजतंत्र। गणतंत्र में कोई पुश्तैनी राजा नहीं होता था। जनपद के गणपति या सभापति का चुनाव हुआ करता था। राजतंत्र राज्यों में पुश्तैनी राजा होते थे।

हम कह आए हैं कि भारत के अनेक जनपदों में से एक जनपद मगध था। बिहार राज्य के जो प्रदेश आजकल पटना और गया जिले के अंतर्गत हैं, उन्हीं का पुराना नाम 'मगध' जनपद था। पहले इसकी राजधानी गिरिव्रज थी। फिर राजगृह बनी और बाद में राजा उदाईभद्र ने पाटलिपुत्र (पटना) को राजधानी बनाया।

मगध के इस आर्य-जनपद में कई तरह के लोग रहते थे। दूसरे जनपदों में ऐसा नहीं था। कई प्रकार के लोगों के होने के कारण ही बहुत पुराने समय से इस जनपद में एक नये ढंग के साम्राज्यवाद का विकास होने लगा था। मगध के इस साम्राज्य ने भारत के कई जनपदों को हजम कर डाला।



3—572 एम० ऑफ आय० अँण्ड बी०/एन०डी/81

2 मौर्य साम्राज्य का आरम्भ

राजा बिंबिसार के समय और उसके बाद मगध राज्य की काफी उन्नति हुई। धीरे-धीरे वह उत्तरी भारत का सबसे बड़ा राज्य बन गया। मगध की पहली और पुरानी राजधानी गिरिव्रज थी। पर इस नगर पर गंगा के उत्तर में स्थित वज्जि संघ के आक्रमण का खतरा रहता था। इस कारण राजा बिंबिसार ने उससे थोड़ा हटाकर राजगृह नगर की स्थापना की। इस के बाद उदाईभद्र ने पाटलिपुत्र की स्थापना कर मगध का एक नया इतिहास आरम्भ किया।

राजा बिंबिसार से लेकर नंद वंश के धननंद तक, जितने भी शासक मगध की गद्दी पर बैठे, उन सबने मगध के साम्राज्य को बढ़ाया। अंग, काशी, वज्जि, मल्ल, वत्स और अवंति तथा कुरु, पांचाल, चेदि, शूरसेन, मत्स्य और कोशल, ये बारह जनपद बौद्ध काल के कुल सोलह जनपदों में से महा जनपद मगध साम्राज्य के अंतर्गत हो गए।

मगध का शासक महा पद्मानंद जिस समय बंगाल की खाड़ी से सतलुज तक, सम्पूर्ण उत्तरी भारत में मगध राज्य की स्थापना कर रहा था, उसी समय बहुत दूर पश्चिम में मेसिडोनिया का राजा फिलिप सारे यवन (ग्रीस) देश को साम्राज्य बनाने में लगा हुआ था। भारत के समान यवन देश में भी उस समय बहुत से छोटे-छोटे राज्य थे।

राजा फिलिप के पुत्र सिकंदर ने आचार्य अरस्त (अरिस्टोटल) की शिक्षा पर चल कर यवन राष्ट्र से बाहर पूर्व की ओर पैर फैलाना शुरू कर दिया था। उसने मिस्र, एशिया-माइनर, ईरान और अफगानिस्तान को जीत लिया और हिंदुकुश पर्वतमाला को लांघ कर भारत की भूमि में प्रवेश किया। वीर सिकन्दर की यवन सेनाएं पंचनद (पंजाव) देश के गणराज्यों से लड़ती-लड़ती थक गयी थीं। मगध साम्राज्य से भिड़ने का उन्हें साहस नहीं हुआ। सिकन्दर को वहीं से वापस लौट जाना पड़ा।

वीर सिकन्दर की सेनाओं ने उत्तर-पश्चिमी भारत को बहुत कमजोर बना ही डाला था। इसी से मगध साम्राज्य के लिये मैदान साफ था। मगध साम्राज्य उन प्रदेशों को

आसानी से जीतने में सफल हुआ । यह कार्य सम्राट अशोक के दादा और मौर्य साम्राज्य के संस्थापक सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य ने किया । हम आगे देखेंगे कि सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य ने किस प्रकार उत्तर-पश्चिमी भारत पर विजय प्राप्त की ।



3 सम्राट अशोक के दादा सम्राट चंद्रगुप्त

पहले बता ही आये हैं कि बुद्ध के समय में भारत सोलह महाजनपदों में बंटा हुआ था। इन जनपदों के अलावा, कुछ और छोटे जनपद भी थे। इनमें पिप्पलिवन का मोरिय गण भी था। वह उत्तरी बिहार में, नेपाल की तराई में वज्जि जनपद के पड़ोस में था। कहा जाता है कि राजा बिंबिसार और अजातशत्रु के आक्रमणों से तंग आकर कुछ स्वतंत्रता प्रेमी लोग वहां जाकर बसे थे। किन्तु मगध नरेश ने वहां भी उन्हें चैन से नहीं रहने दिया। मगध ने उत्तरी बिहार के अन्य गणराज्यों के साथ मोरिय गण को भी अपने राज्य में मिला लिया।

मोरिय गण (मौर्य वंश) की एक रानी पाटलिपुत्र-नगर में छिप कर अपना जीवन बिता रही थी। उसके भाई-बंध भी वहीं उसके साथ थे। मगध सम्राट के कोप से बचे रहने के लिये मोरिय गण के इन सब लोगों ने, विशाल पाटलिपुत्र में छिपे रहने में ही अपना कल्याण समझा। उसी हालत में उस परिवार में अशोक के दादा कुमार चंद्रगुप्त का जन्म हुआ।

कुमार चंद्रगुप्त की माता मगध के राजकर्मचारियों से डरती थी कि वे कहीं कुमार को मार न डालें। इसीलिये उसने नवजात शिशु को एक ग्वाले को सौंप दिया था। अपनी उम्र के दूसरे बच्चों के साथ खेलते-खेलते मोरिय गण के राजकुमार चंद्रगुप्त का भी ग्वालों में पालन पोषण होने लगा।

एक बार गाय चराते समय जंगल में सारे बच्चे एक अनोखा खेल खेलने लगे। चंद्रगुप्त राजा बना। अन्य बालकों को उपराज, न्यायाधीश, राज कर्मचारी, चोर, डाकू आदि बनाया गया। राजपुरुष चोर को राजा के सामने लाए। उसने दोनों ओर के बयान सुने और न्यायाधीश के निर्णय के अनुसार चंद्रगुप्त ने अपना फैसला सुना दिया। उसने चोरों को कड़ी सज़ा दी।

चंद्रगुप्त और उस के साथी बच्चों का यह खेल चाणक्य नाम का एक ब्राह्मण कुछ दूरी पर खड़ा देख रहा था। जिस समझदारी और शान से कुमार चंद्रगुप्त राजा की भूमिका निभा रहा था, उसे देख चाणक्य को लगा कि यह बालक बड़ा होनहार है।



चन्द्रगुप्त और उसके साथी बच्चों का यह खेल
चाणक्य नाम का एक ब्राह्मण कुछ दूरी पर खड़ा देख रहा था।

शाम को चाणक्य, कुमार चंद्रगुप्त का पीछा करता-करता उसके गांव पहुंचा। उसने कुमार के संरक्षक ग्वाले के सामने एक हजार कार्षापण (उस समय का रुपये के समान सिक्का) रखे और कहा —

"मैं तुम्हारे पुत्र को सब विद्याएं सिखाऊंगा। इसे तुम मेरे साथ भेज दो"।

4—572 एम ऑफ आय अंड बी/81

ग्वाला तैयार हो गया । चाणक्य, कुमार चंद्रगुप्त को अपने साथ ले गया । चाणक्य से चंद्रगुप्त ने सभी विद्याएं भलीभाँति सीखीं ।

चाणक्य तक्षशिला का प्रसिद्ध आचार्य था । तक्षशिला उस समय विद्या का केन्द्र थी । वह अपने समय का राजनीति शास्त्र का सबसे बड़ा पण्डित माना जाता था । उस समय पाटलिपुत्र के वैभव की सारे भारत में धूम थी । चाणक्य को आशा थी कि मगध का प्रतापी सम्राट धननंद उसका बहुत सम्मान करेगा । इसी आशा से वह पाटलिपुत्र गया था ।

आचार्य चाणक्य देखने में बड़ा कुरूप था । उसके सामने के दांत टूटे हुए थे । राजा धननंद ने जब ऐसे व्यक्ति को प्रमुख आसन पर बैठे देखा तो पूछा —

"इस प्रमुख-आसन पर बैठने वाले तुम कौन हो ?"

आचार्य चाणक्य से उत्तर मिला —"यह मैं हूं" ।

राजा धननंद गुस्से से आपे से वाहर हो गया । उसने आज्ञा दी—

"इस नीच ब्राह्मण को यहां से धक्के देकर निकाल दो ।"

भला चाणक्य ऐसे अपमान को कहां सहने वाला था । उसने अपना कमंडल जमीन पर पटक दिया और गर्जना की—

"राजा उद्धत हो गया है । समुद्र से घिरी सारी पृथ्वी "अब नंद का नाश देखो" ।

फिर चाणक्य वहां से भाग निकला । राजपुरुषों ने उसका पीछा किया । वह किसी के हाथ न लगा । आचार्य चाणक्य ने प्रतिज्ञा की थी कि वह नंद वंश का नाश कर मगध के सिंहासन पर अपने मन का राजा बिठाएगा ।

चाणक्य ने सबके सामने जो प्रतिज्ञा की थी, उसे पूरी करने के लिये वह अपनी सारी शक्ति लगा रहा था । नंद वंश के राजकुमार पर्वतक को चाणक्य ने धननंद के विरुद्ध षड़यंत्र करने के लिये अपने पक्ष में कर लिया । उसे लेकर चाणक्य विंध्याचल के जंगलों में चला गया । वहां उसने नकली सिक्के वना कर 80 करोड़ कार्षापण एकत्र किये और उस धन से एक बड़ी सेना खड़ी की ।

इसी अवसर पर चाणक्य की भेंट कुमार चंद्रगुप्त से हुई । चंद्रगुप्त में सम्राट बनने के सारे लक्षण थे, जो कुमार पर्वतक में नहीं थे । चाणक्य पर्वतक को चंद्रगुप्त के मार्ग से हटाना चाहता था । दोनों कुमारों को वह एक साथ मगध की राजगद्दी पर नहीं बिठा सकता था । उसने दोनों कुमारों के गले में एक-एक सुवर्ण-सूत्र बाँध दिया । एक बार जब चंद्रगुप्त सो रहा था, तो उसने पर्वतक से कहा —

"ऐसे ढंग से चंद्रगुप्त के गले में से सोने के कंठे को निकाल लाग्रो कि न गांठ खुले ग्रौर न ही सूत्र टूटे" ।

पर्वतक को कोई उपाय नहीं सूझा । वह असफल हो कर लौट आया ।

ऐसे ही दूसरे दिन जब पर्वतक सो रहा था, तो चाणक्य ने चंद्रगुप्त को भी वही आदेश दिया । आचार्य के आदेश के अनुसार, पर्वतक का सिर काट कर ही सूत्र प्राप्त किया जा सकता था । कुमार चंद्रगुप्त ने वही किया । पर्वतक का सिर काट कर चंद्रगुप्त ने सुवर्ण-सूत्र को चाणक्य के सामने लाकर रख दिया ।

इस घटना से चाणक्य को चंद्रगुप्त की दृढ़ता ग्रौर तेजी का पता चल गया । चंद्रगुप्त के रास्ते से पर्वतक हट चुका था । अब उसे चंद्रगुप्त के रूप में ऐसा व्यक्ति मिला था, जो न केवल वीर ग्रौर साहसी था, बल्कि अपने कार्य की सिद्धि के लिये कोई भी काम कर सकता था ।

चंद्रगुप्त सेना का नायकत्व करने में समर्थ था । उसने आचार्य चाणक्य के निरीक्षण में मगध साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया । अनेक गांवों तथा नगरों पर हमले किये गए । किन्तु कोई सफलता नहीं मिली । मगध सेनाग्रों से परास्त होकर चंद्रगुप्त को जंगलों में छिपकर अपनी जान बचानी पड़ी ।

एक बार आचार्य चाणक्य ग्रौर चंद्रगुप्त वेश बदल कर एक गांव में पहुंचे । वहां एक स्त्री अपने पुत्र को पूवे बनाकर खिला रही थी । लड़का चारों ग्रोर के किनारों को छोड़ता हुआ केवल बीच का ही भाग खा रहा था । यह देखकर माता ने कहा —

"तुम्हारा व्यवहार चंद्रगुप्त जैसा ही है, जिसने अपने मूर्खता के कारण सीमांत-प्रदेश को बिना जीते ही, गांवों ग्रौर नगरों पर आक्रमण कर दिया ।"

यह बात सुन कर चाणक्य ग्रौर चंद्रगुप्त की आंखें खुलीं ।



माता ने बालक को कहा "तुम्हारा व्यवहार चंद्रगुप्त जैसा ही है"

इसी समय वीर सिकंदर ने गांधार और पंजाब पर हमले किए । मगध पर विजय प्राप्त करने के लिए चंद्रगुप्त सिकंदर की मदद लेना चाहता था । वह एक बार उससे मिलने भी गया, पर स्वेच्छाचारी सिकंदर से उसका मेल नहीं बैठा । सिकंदर और चंद्रगुप्त दोनों ही स्वेच्छाचारी और महत्वाकांक्षी थे ।

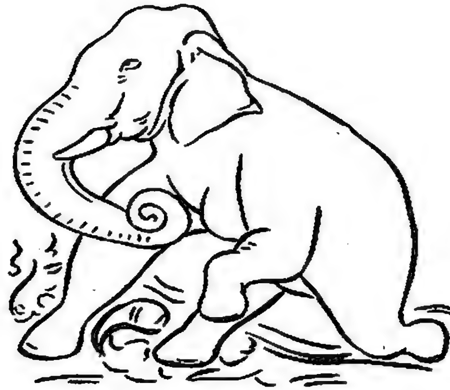
सिकंदर न पंजाब की भूमि से आगे पैर बढ़ा सका और न ही अपने वतन मैसोडोनिया लौट सका । लौटते समय ई० पू० ३२३ में बेबिलोन नगरी में उसकी मृत्यु हो गयी ।

आचार्य चाणक्य और चंद्रगुप्त के नेतृत्व में यूनानी शासन के विरुद्ध पंजाब में विद्रोह हुआ । सिकंदर के आदमियों को पंजाब से भगाकर चंद्रगुप्त ने वहां अपना प्रभुत्व स्थापित किया । इस प्रकार सीमाप्रदेश को अपने अधीन कर वहां के वीर सैनिकों को साथ ले

चाणक्य और चंद्रगुप्त पूर्व की ओर बढ़ने लगे । जो ग्राम और नगर उनके रास्ते में आए उन्हें जीतते हुए वे पाटलिपुत्र जा पहुंचे । वहां धननंद को परास्त कर मगध साम्राज्य पर अपना अधिकार कर लिया ।

अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार आचार्य चाणक्य ने नंद वंश का नाश किया और चंद्रगुप्त मौर्य को विशाल मगध साम्राज्य का सम्राट बना दिया । स्वयं आचार्य चाणक्य चंद्रगुप्त का प्रधान अमात्य बना ।

सम्राट चंद्रगुप्त ही मौर्य वंश और मौर्य साम्राज्य का संस्थापक था । कहा जाता है कि मौर्य गण के लोग मोरों के पंखों से अपने घरों की छतें बनाते थे । इसी कारण उनका नाम मौर्यगण पड़ा था । मौर्य मोरिय का ही बदला हुआ रूप है । इस तरह चंद्रगुप्त ने अपने मौर्य गण की हार का बदला लिया और जिस मगध ने उसके कबीले को हराया था, उसी को जीत कर उसका राजा बन गया ।



8—5?2एम् ऑफ आय अंड बी/81

4 अशोक का जन्म

चंद्रगुप्त मौर्य ने ईसा पूर्व 322 से ई० पू० 298 तक राज्य किया। चौबीस वर्ष के अपने शासन काल में उसने अपने मौर्य साम्राज्य को सारे उत्तर भारत में फैला दिया। सम्राट चंद्रगुप्त के बाद उसका पुत्र बिंदुसार मौर्य सम्राट बना। ग्रीक लेखकों ने उसे अमित्रघातक लिखा है। अमित्रघातक का अर्थ होता है शत्रुओं का नाश करने वाला।

आचार्य चाणक्य ही चंद्रगुप्त मौर्य और उसके साम्राज्य के निर्माता थे। वे उसके राज्य काल में उसके प्रधानमंत्री रहे और बाद में बिंदुसार के समय में भी थोड़े समय तक उसी स्थान पर आसीन रहे। उनका एक नाम विष्णुगुप्त भी था। उनको कौटिल्य नाम से भी जानते थे। उनके द्वारा रचित अर्थशास्त्र के ग्रंथ को ही कौटिल्य का अर्थशास्त्र कहते है। नई दिल्ली में जो 'चाणक्यपुरी' है, वह आचार्य चाणक्य की ही यादगार है।

चंद्रगुप्त ने जिस साम्राज्य को बनाया था, बिंदुसार ने न केवल उसकी रक्षा ही की, बल्कि आस पास के और प्रदेश जीत कर, मौर्य साम्राज्य का और भी अधिक विस्तार कर दिया।

जिस समय चंद्रगुप्त अपने जीते नए साम्राज्य को दृढ़ करने में लगा हुआ था उसी समय सिकंदर के दो सेनापति सेल्यूकस और ऐंटिगोनस भी आपस में राज्य के लिए संघर्ष कर रहे थे। सेल्यूकस, ऐंटिगोनस को हराकर सम्राट बना। उसकी राजधानी सीरिया में थी। इसीलिए उसे सीरियन सम्राट कहा जाता है। वह एशिया माइनर से हिंदुकुश तक फैले एक विशाल साम्राज्य का अधिपति हो गया था। उसने ई० पू० 306 में अपना विधिवत राज्याभिषेक कराया था।

पश्चिमी और मध्य एशिया में अपने साम्राज्य को और शक्तिशाली बनाने के लिए सेल्यूकस ने ई० पू० 305 में भारत पर आक्रमण किया। बिना किसी रुकावट के वह सिंधु नदी तक आ पहुंचा था। उसका सामना करने के लिए सिंधु तट पर चंद्रगुप्त की सेना तैयार थी। दोनों में घमासान युद्ध हुआ। युद्ध के पश्चात् दोनों सम्राटों में संधि हुई। उसकी शर्तें थीं —

1 चंद्रगुप्त सेल्यूकस को 500 हाथी देगा।

2 इसके बदले में सेल्यूकस निम्नलिखित चार प्रदेश चंद्रगुप्त को देगा —

1 अफगानिस्तान का पहाड़ी प्रदेश, 2 कंदहार, 3 हेरात, 4. गद्रासिया (बलूचिस्तान) । सेल्यूकस ने चंद्रगुप्त के साथ अपनी कन्या का विवाह भी किया ।

इस संधि से मौर्य साम्राज्य को बहुत लाभ हुआ । इससे उसकी पश्चिमी सीमा हिंदुकुश के पश्चिम में भी कुछ दूर तक फैल गई । संधि के बाद सेल्यूकस ने मैगस्थनीज को राजदूत नियुक्त कर चंद्रगुप्त की राजसभा में भेजा । वह बहुत समय तक मौर्य-साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र में रहा । उसने उस समय के भारत का बहुत अच्छा वर्णन किया है ।

सम्राट बिंदुसार के समय में दक्षिण भारत में भी मौर्य साम्राज्य का विस्तार हुआ । प्राचीन तमिल साहित्य में लिखा है कि मौर्य ने दक्षिण भारत पर बारबार आक्रमण किए । मौर्यों की सेनाएं कोंकण से कर्नाटक और उसके भी दक्षिण में तुलु प्रदेश से होती हुई कोयंबतूर की ओर आगे बढ़ीं तथा मदुरा तक पहुंची ।

पुराने समय में राजाओं की बहुत सी रानियां हुआ करती थीं । जिस जगह राजा की रानियां और उनकी दासियां रहती थीं, उसको अंतःपुर कहा जाता था । उसमें केवल राजा ही जा सकता था । कहा जाता है कि सम्राट बिंदुसार की सोलह रानियां थीं और सौ पुत्र थें । उनमें अशोक ही सबसे अधिक योग्य सिद्ध हुए ।

अशोक की माता के बारे में कई प्रकार की कथाएं प्रचलित हैं । हम उन सबको छोड़ यहां इतना ही याद रखें कि अशोक की माता का नाम सुभद्रांगी या जनपद कल्याणी था । वह चंपा के ब्राम्हण की परमसुंदरी कन्या थी । लिखा है —

"चंपा नगरी में एक गरीब ब्राह्मण रहता था। उसकी बहुत ही सुंदर कन्या थी। वह इतनी खूबसूरत थी कि सारे जनपद में उसका जवाब नहीं था। इसी कारण उसका नाम सुभद्रांगी जनपद-कल्याणी पड़ा था। ब्राह्मण ने अपने लड़की के भविष्य के बारे में ज्योतिषियों से पूछा । उन्होंने बताया कि उसका पति कोई राजा होगा । उसका एक पुत्र सम्राट बनेगा और दूसरा भिक्षू या संन्यासी होगा ।

सुनकर ब्राह्मण बहुत खुश हुआ। पैसा आदमी से क्या-क्या नहीं कराता। वह अपनी पुत्री को लेकर पाटलिपुत्र चला गया । उसे अच्छे-अच्छे वस्त्रों और गहनों से सजाया और राजा बिंदुसार के पास ले गया और अपनी लड़की राजा बिंदुसार की पत्नी बनाने के लिए दे दी ।

अंत:पुर में प्रवेश करते ही उसकी सुन्दरता को देखकर दूसरी रानियां डर गईं। रानियों ने उसे नाइन का काम सिखाया। जब राजा सोने जाता तो सुभद्रांगी उसके सिर की मालिश किया करती। एक दिन राजा उस पर बहुत प्रसन्न हुआ। तब सुभद्रांगी ने अपना परिचय दिया।

"तुझे नाइन का काम किसने सिखाया ?" राजा ने पूछा ।

सुभद्रांगी ने उत्तर दिया—"अंत:पुर की रानियों ने ।"

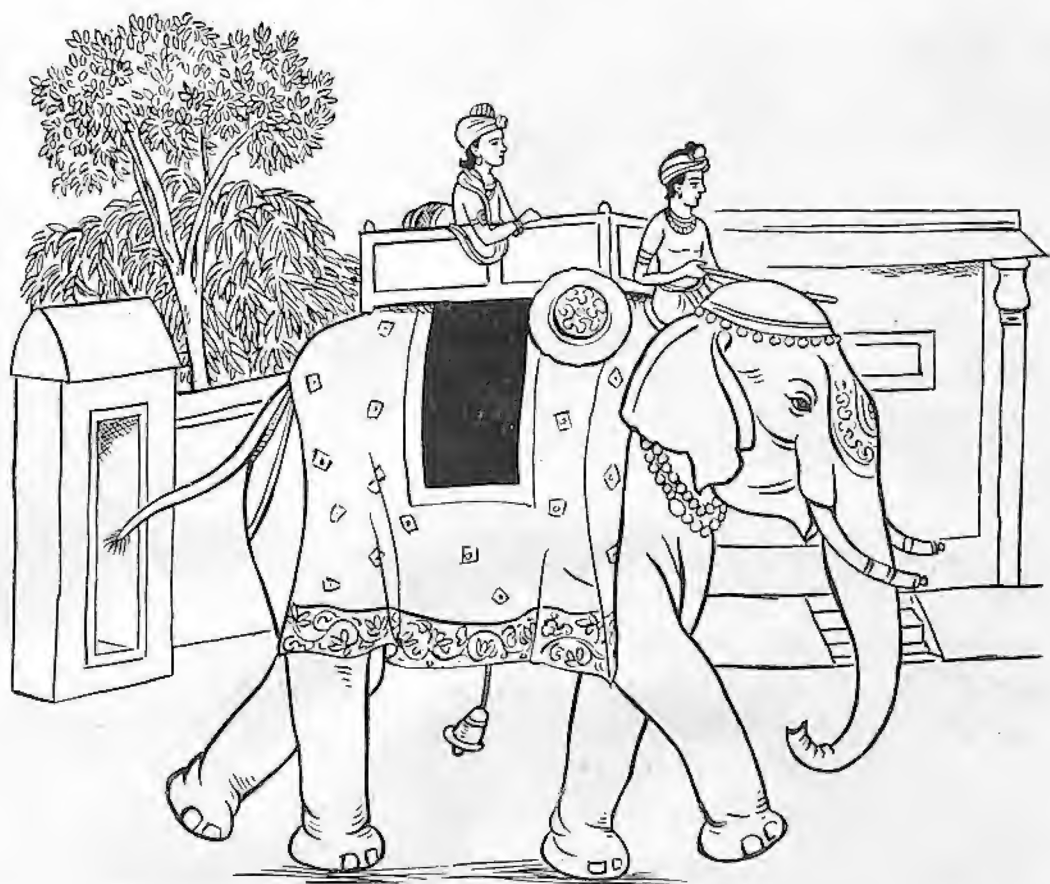
इसके बाद उस परम सुन्दरी को नाइन का काम करने की जरूरत नहीं पड़ी। राजा बिंदुसार ने उसे अपनी पटरानी बनाया ।

कुछ दिन बाद सुभद्रांगी ने एक पुत्र को जन्म दिया। राजा ने रानी सुभद्रांगी से पूछा "इस बालक का क्या नाम रखा जाए ?"

रानी ने उत्तर दिया—"देव ! इस बच्चे के पैदा होने से मैं अशोक, शोक-रहित हो गई हूं। इसलिए इसका नाम अशोक रखा जाए।" रानी की इच्छा के अनुसार बालक का नाम अशोक ही रखा गया। कुछ वर्षों बाद रानी का दूसरा पुत्र हुआ जिसका नाम विगत-शोक रखा गया ।

सब राजकुमारों की शिक्षा-दीक्षा की उचित व्यवस्था की गई थी। उनको वे सब विद्याएं सिखाई गईं जो राजकुमारों के काम की थीं। अशोक अपने भाईयों में सबसे होशियार तथा तीव्र बुद्धि था। उसने बहुत ही जल्दी शास्त्र और शस्त्र सम्बन्धी ज्ञान हासिल कर लिया। इससे उसके दूसरे भाई और खासतौर पर उसका सौतेला भाई सुसीम उससे ईर्ष्या करने लगे। राजकुमार जब युवा हुए तो उनको शासन का काम भी सिखाया गया ।

5 अशोक उज्जैन का सूबेदार बना



अशोक हाथी पर बैठकर बगीचे में पहुंचा

अशोक पत्थर के समान कठोर था। जैसा शरीर वैसा ही मन। वह देखने में सुंदर नहीं था। शुरू के जीवन में अशोक ने अनेक क्रूर कार्य भी किए। शायद इसी कारण उसे चंडाशोक कहा गया। और इसीलिए सम्राट बिंदुसार भी उसे प्रेम नहीं करता था। लेकिन साथ ही यह भी जानता था कि उसके पुत्रों में वही सबसे योग्य है। आयु में सुसीम ही अशोक से बड़ा था और परंपरा के अनुसार वही राज्य का उत्तराधिकारी भी था। बिंदुसार भी उसी को अपने बाद साम्राज्य का स्वामी बनाना चाहता था।

6—572 एम् ऑफ आय अँड बी/81

किंतु सम्राट बिंदुसार साथ ही यह भी जानना चाहता था और अपने मंत्रियों को भी बताना चाहता था कि उसके पुत्रों में अधिक योग्य कौन है और राज्य का भार कौन संभाल सकेगा ?

बिंदुसार ने पिंगल वत्सजीव नामक एक आजीवक साधू से कहा कि आप हमारे सब कुमारों की परीक्षा लीजिए कि इनमें सबसे योग्य कौन है ? पिंगल वत्सजीव ने कहा कि आप कुमारों को लेकर सुवर्ण मंडप बाग में चलें । मैं वहां परीक्षा लूंगा ।

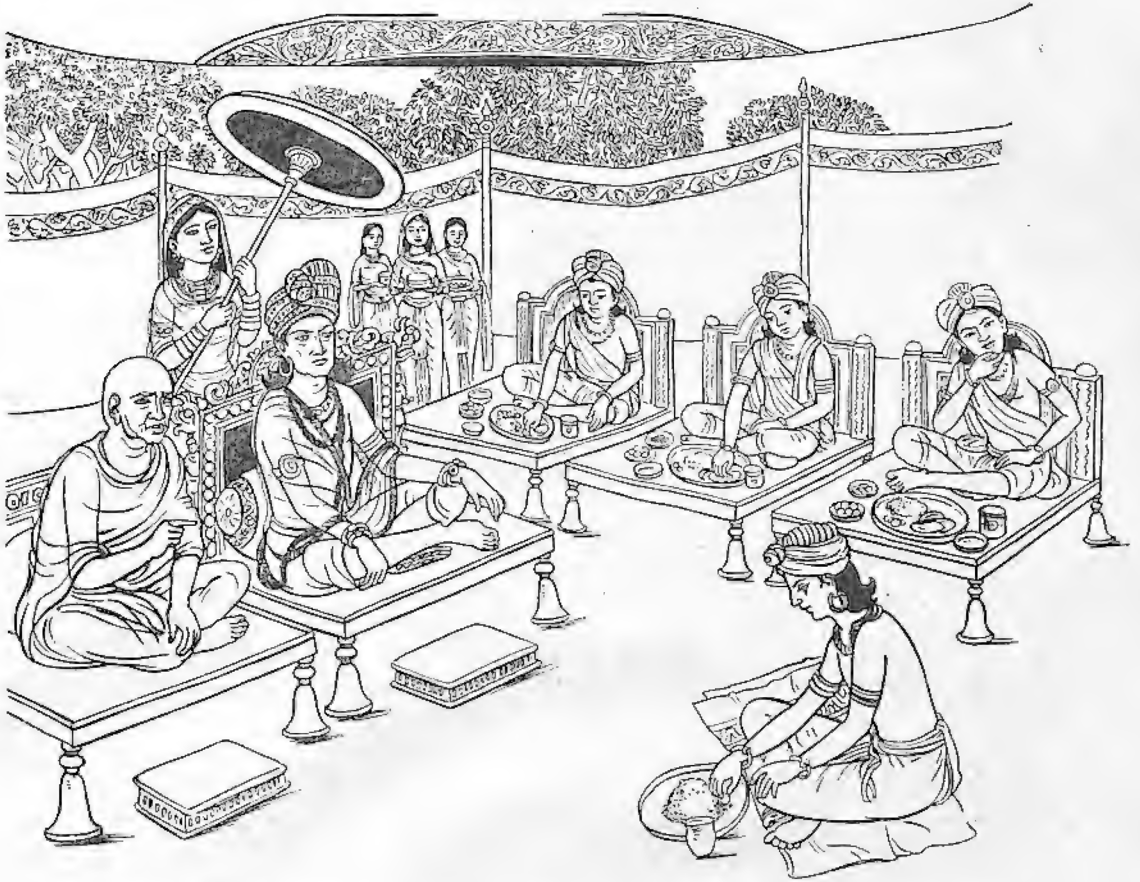
राजा सब कुमारों को लेकर बाग में गया । किंतु अशोक नहीं गया ।

अशोक की माता ने उससे पूछा कि तुम भी परीक्षा देने बाग में क्यों नहीं जाते ? उसने कहा—"माता राजा को तो मेरी शक्ल भी अच्छी नहीं लगती, मैं जाकर क्या करूंगा ।" परंतु उसकी माता ने आग्रह किया कि तुम जरूर जाओ । तब अशोक बोला—"अच्छा मैं जाता हूँ, मेरे लिए भोजन भेज देना ।"

अशोक जब महल से बाहर निकला तो वहां उसका मित्र राजमंत्री का पुत्र राधगुप्त खड़ा था । उसने कहा—"राजकुमार तुम कहां जा रहे हो !" अशोक ने कहा—"आज सुवर्ण मंडप उद्यान में राजकुमारों की परीक्षा है, वहां जा रहा हूं ।" राधगुप्त ने कहा—"लो यह हाथी खड़ा है, इस पर बैठ कर जाओ ।" अशोक हाथी पर बैठकर बगीचे में पहुंचा । वहां राजकुमार सोने चांदी के अच्छे अच्छे आसनों पर बैठे हुए थे । अशोक के लिये कोई जगह नहीं थी । वह अपना दुपट्टा बिछाकर जमीन पर ही बैठ गया । इसके बाद सोने चांदी के बर्तनों में राजकुमारों का भोजन आया । अशोक के लिए उसकी मां ने मिट्टी के बर्तनों में दही भात और मिट्टी के कूजे में पीने का पानी भेजा ।

जब सब राजकुमार खा पी चुके तो सम्राट बिंदुसार ने परिव्राजक वत्सजीव से पूछा—"आचार्य ! आपने सब राजकुमारों को देखा । बताइए इनमें सबसे योग्य कौन है ?"

परिव्राजक अपने मन में समझ गया था कि अशोक ही सबसे योग्य है, पर राजा अशोक को नहीं चाहता था, इसलिए साफ-साफ न कहकर बोला—"महाराज, जिस राजकुमार का यान (सवारी) सबसे अच्छा है, वही सबसे योग्य है ।" दूसरे राजकुमारों ने सोचा कि हम सोने चांदी के रथ पर बैठकर आए हैं इसलिए हम योग्य हैं । पर अशोक समझ गया कि वीरों और राजाओं के लिए सबसे अच्छी सवारी हाथी की पीठ ही है, इसलिए मेरा यान सबसे अच्छा हैं ।



अशोक के लिए उसकी मांने मिट्टी के बर्तनों में दही-भात और पीने का पानी भेजा।

राजा ने परिव्राजक से फिर कहा—"आचार्य और परीक्षा लीजिये।" परिव्राजक ने कहा—"महाराज जिसका आसन सबसे अच्छा है वही सबसे योग्य है।" दूसरे राजकुमारों ने सोचा कि हमारे आसन सोने चांदी के हैं इसलिये अच्छे हैं, परंतु अशोक समझ गया कि सबसे अच्छा आसन तो धरती माता का ही होता है। जो धरती को प्रेम करता है, जिसके पैर धरती पर खड़े होते हैं, वही जीतता है।

इसी तरह परिव्राजक ने कहा कि जिसके बर्तन और खाने पीने की सामग्री सबसे अच्छी हैं वही योग्य है। दूसरे राजकुमार अपने सोने चांदी के बर्तन और शर्बत, मिठाई के ऊपर फूल रहे थे। परंतु वास्तव में सबसे अच्छे बर्तन और खाने पीने की चीजें अशोक की ही थीं। उसके बर्तन साफ सुथरे और सोंधी मिट्टी के थे। उसका खाना दही भात और पेय शुद्ध पानी था

इसलिए अशोक ही सबसे योग्य ठहरा । परिव्राजक इस बात को समझ गया यद्यपि और राजकुमार भ्रम में रहे ।

सम्राट चंद्रगुप्त के समान ही बिंदुसार के राज्य काल में भी भारत का विदेशों के साथ राजनीतिक संबंध बना रहा । उस समय सेल्युकस का उत्तराधिकारी एंटियोकस सीरियन साम्राज्य का सम्राट था । उसने डायमेचस को अपना राजदूत बनाकर पाटलिपुत्र भेजा । प्राचीन यूनानी लेखकों ने एंटियोकस और बिंदुसार के संबंध में अनेक कथाएं लिखी हैं ।

एक कथा यह है कि एक बार बिंदुसार ने एंटियोकस को लिख भेजा कि कृपा करके मेरे लिए कुछ अंजीर, अंगूर की शराब और एक यूनानी अध्यापक खरीदकर भेज दो । उसके उत्तर में एंटिकोयस ने अंजीर और अंगूर की शराब तो खरीदकर भेज दी, पर अध्यापक के बारे में कहला भेजा कि यूनान में अध्यापकों का क्रय–विक्रय नहीं होता ।

उस समय मिस्र का राजा टाल्मी फिलेडेल्फस था । उसने डायोनीसियस नाम का राजदूत पाटलिपुत्र में भेजा था । वह काफी समय तक बिंदुसार के दरबार में रहा । उसने भी मैगस्थनीस की तरह ही उस समय के भारत का विवरण लिखा है । उसकी लिखित सामग्री ईसा की प्रथम सदी तक अवश्य सुरक्षित रही, किंतु अब नहीं मिलती ।

चंद्रगुप्त के राज्य काल में मौर्य साम्राज्य का प्रधानमंत्री आचार्य चाणक्य विष्णुगुप्त था । बिंदुसार के शासन के शुरू के वर्षों में वही प्रधान अमात्य रहे । उसके बाद राधागुप्त प्रधान अमात्य बना ।

मौर्य साम्राज्य के साथ-साथ मौर्य सम्वत् की भी स्थापना हुई । इन दोनों के संस्थापक सम्राट चंद्रगुप्त ही थे । एक शिलालेख में, 'मोरिय संवत्' का उल्लेख मिलता है ।

सम्राट बिंदुसार अशोक को नहीं चाहता था, परंतु उसके मंत्री अशोक पर प्रसन्न थे । खासतौर पर प्रधान अमात्य राधागुप्त अशोक से बहुत ही प्रभावित था । उसने अशोक को मौर्य सम्राट बनने में खूब मदद की ।

जैसे आज संपूर्ण भारत का एक राष्ट्रपति होता है और हर प्रदेश या राज्य के अलग-अलग गवर्नर या राज्यपाल होते हैं, वैसे ही उस जमाने में संपूर्ण राज्य का स्वामी सम्राट या राजा हुआ करता था और दूर के प्रांतों के शासक उपराज हुआ करते थे । वे प्रायः राजकुमार या राजपरिवार के लोग ही होते थे । राजपरिवार के लोग न मिलें तो कोई दूसरा योग्य व्यक्ति नियुक्त किया जाता था ।

सम्राट बिंदुसार ने सुसीम या सुमन कुमार को उपराज बना कर तक्षशिला भेजा था। अशोक तो उसे एकदम प्रिय नहीं था। वह उसे देखना तक नहीं चाहता था। वह अशोक को अपनी नजरों से दूर ही दूर रखना चाहता था। इसलिए सम्राट ने उसे उपराज बना कर उज्जैन भेजने का निर्णय किया। कुमार अशोक को आज्ञा का पालन करना पड़ा। उसने उज्जैन जाने की सारी तैयारी की और पाटलिपुत्र से उज्जैन को निकल पड़ा। अशोक ने इस पद पर बड़ी योग्यता से काम किया।



7—572 एम् ऑफ आय अंड बी/61

6 अशोक का विदिशा नगरी में विवाह

कुमार अशोक उज्जैन को रवाना हुआ। उन दिनों आज जैसे आने जाने के साधन नहीं थे। पाटलिपुत्र से उज्जैन काफी दूर है। रथ या हाथी द्वारा ही यात्रा की जाती थी। अशोक के साथ नौकर-चाकर और सैनिक भी थे। वे उज्जैन के उपराज बन कर जो जा रहे थे।

पाटलिपुत्र से उज्जैन जाते हुए रास्ते में विदिशा नाम की नगरी पड़ती है। वह उस समय वैभवशाली नगरी थी।

विदिशा (भिलसा) भोपाल से दिल्ली की ओर जाते हुए कुछ ही दूर पर पड़ती है। नगर की शोभा देखने के लिए अशोक कुछ दिन तक विदिशा में रुके। वहां के सामंत और श्रेष्ठियों (सेठों) ने उनका यथोचित आदर सत्कार किया।

उसी नगरी में एक श्रेष्ठी रहता था। उसकी एक कन्या थी। उसका नाम देवी था। वह सुंदर और भाग्यवती थी। इसी कारण उसके पिता ने उसका नाम देवी रखा था। वह बाद में विदिशा–महादेवी के नाम से प्रख्यात हुई।

उपराज अशोक का देवी के साथ परिचय हुआ। दोनों एक दूसरे की ओर आकर्षित हुए। देवी के पिता श्रेष्ठी ने उसका विवाह अशोक के साथ ई०पू० 285 में कर दिया।

और कुछ रोज वहीं ठहरने के बाद अशोक रानी देवी के साथ उज्जैन पहुंचा। देवी के साथ उसके पिता द्वारा भेजी गई अनेक दासियां एवं सेविकाएं भी थीं।

उज्जैन पहुंचने पर अशोक ने अपने पद का भार स्वयं संभाला। जिस प्रकार बाद में तक्षशिला में विद्रोह हुआ और वहां अशोक को जाना पड़ा वैसा विद्रोह उज्जैन में नहीं हुआ। फिर भी यहां की परिस्थिति भी कुछ कुछ वैसी ही थी। बिंदुसार ने उसी परिस्थिति को संभालने के लिए ही अशोक को भेजा था।

विवाह के एक वर्ष बाद उज्जैन में ही अशोक की रानी देवी ने एक पुत्र को जन्म दिया। यही बालक था जो आगे चल कर महिंद महास्थीवर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसी के कारण सिंहल द्वीप में बौद्ध धर्म की स्थापना हुई।

महिंद के जन्म से दो वर्ष पश्चात् (ई०पू० 282)देवी को एक कन्या हुई । उसका नाम संघमित्रा रखा गया । यही संघमित्रा बौद्ध भिक्षुणी होकर अपने बड़े भाई की तरह श्रीलंका पहुंची और वहां भिक्षुणी संघ की स्थापना की । संघमित्रा द्वारा रोपा गया महाबोधि वृक्ष आज भी श्रीलंका के अनुराधापुर नगर में लहलहा रहा है ।

अब उपराज अशोक एक पुत्र और एक पुत्री के पिता थे ।



7 उज्जैन से पाटलिपुत्र

आज हमारे पास जल्द-से-जल्द किसी भी स्थान पर पहुंचने के लिए मोटर गाड़ी, रेल गाड़ी और हवाई जहाज जैसे वाहन हैं। इसी प्रकार एक राज्य से दूसरे राज्य के साथ सम्बन्ध जोड़ने के लिए डाक, तार और टेलिफोन की व्यवस्था है। प्राचीन काल में ये सब सुविधाएं नहीं थीं।

आज भारत की राजधानी दिल्ली में बैठकर भारत के राष्ट्रपति पार्लियामेंट द्वारा सारे देश का संचालन करते हैं। किसी भी राज्य या प्रदेश में कोई गड़बड़ी हो गई हो तो तुरंत दिल्ली में बैठे-बैठे ही आदेश दे दिया जा सकता है। जरूरत हुई तो रेल या हवाई जहाज द्वारा कहीं भी सेनाएं भी भेजी जा सकती हैं।

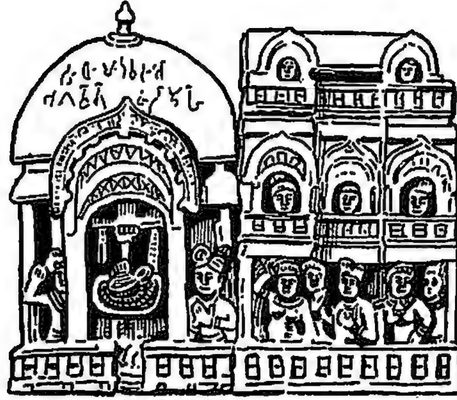
पुराने समय में इस प्रकार की सुविधाएं न रहने के कारण सुदूर राज्यों में समय-समय पर विद्रोह हो जाते थे। ऐसी अवस्था में वहां की व्यवस्था करने में बड़ी कठिनाई होती थी। राजधानी से सेना भेजने में बहुत समय लग जाता था। कभी-कभी तो सेनाओं के पहुंचते-पहुंचते वारा न्यारा हो जाता था।

इस समय मौर्य साम्राज्य काफी विशाल हो गया था। पाटलिपुत्र में बैठकर सारे साम्राज्य की ठीक-ठीक व्यवस्था नहीं हो पाती थी। ऐसे दूर के प्रत्येक प्रान्त में सूबेदार या उपराज नियुक्त कर के भेज दिए जाते थे। फिर भी कभी-कभी उपराजाओं की असावधानी के कारण विद्रोह उठ खड़े हो जाते थे।

तक्षशिला का सूबा पाटलिपुत्र से बहुत दूर पड़ता था। जिस समय अशोक उज्जैन में उपराज बनकर राज-कार्य कर रहा था, उसी समय तक्षशिला में वहां की जनता ने विद्रोह किया।

उज्जैन में मिले यश के कारण अब राज्य के अधिकारी अशोक की शक्ति तथा कार्य-क्षमता से परिचित हो गए थे। अशोक सुंदर न सही पर वीर था, दृढ़संकल्पी था और अपने कार्य को सिरे चढ़ाना अच्छी तरह जानता था। इसीलिए सम्राट बिंदुसार ने तक्षशिला के विद्रोह को शांत करने के लिए अशोक को उज्जैन से तुरंत बुला भेजा। सम्राट ने अशोक को ही उस कार्य के लायक समझा।

राजाज्ञा पाकर अशोक पाटलिपुत्र पहुंचा । अपनी रानी देवी को विदिशा में पिता के पास ही रहने दिया । अशोक देवी को इसीलिए साथ पाटलिपुत्र नहीं ले गया था, क्योंकि तक्षशिला विद्रोह शांत कर वह पुन: उज्जैन लौट आना चाहता था । किन्तु महिंद तथा संघमित्रा को साथ ले गया ।



8—572 एम् ऑफ आय अंड बी/81

8 अशोक तक्षशिला में

तक्षशिला मौर्य साम्राज्य के पश्चिम-उत्तर भाग उत्तरापथ की राजधानी थी । वहां बारबार विद्रोह हुआ करते थे । उत्तर-पश्चिम भारत का यह प्रांत पहले स्वतन्त्र था । वहां गणराज्य थे । वहां के लोग इसी प्रकार की राज्य व्यवस्था के प्रेमी थे ।

इस प्रदेशवासियों को सबसे पहले यवनों के साथ संघर्ष करना पड़ा । चंद्रगुप्त मौर्य की मदद से उन्होंने उन यवनों को उत्तर में खदेड़ दिया, किन्तु उसके बाद वे फिर अपने गणराज्य को नहीं कायम कर सके । उन्हें मौर्य साम्राज्य के अधीन होना पड़ा ।

यह प्रदेश अभी नया-नया ही मौर्य साम्राज्य का हिस्सा बना था । वहां के लोगों के मन पर अभी भी पुराने जनपदों या गणराज्यों की स्वतन्त्र सत्ता की छाप कायम थी । वे उसे भुला नहीं पाए थे । इसी कारण वहां की जनता अवसर पाकर विद्रोह का झंडा खड़ा कर देती थी ।

उपराज अशोक दोनों बच्चों को लेकर पाटलिपुत्र पहुंचे तो उन्हें देखकर सम्राट बिंदुसार और रानी सुभद्रांगी को अपार आनन्द हुआ । अशोक को सामने देख सम्राट ने आज्ञा दी—

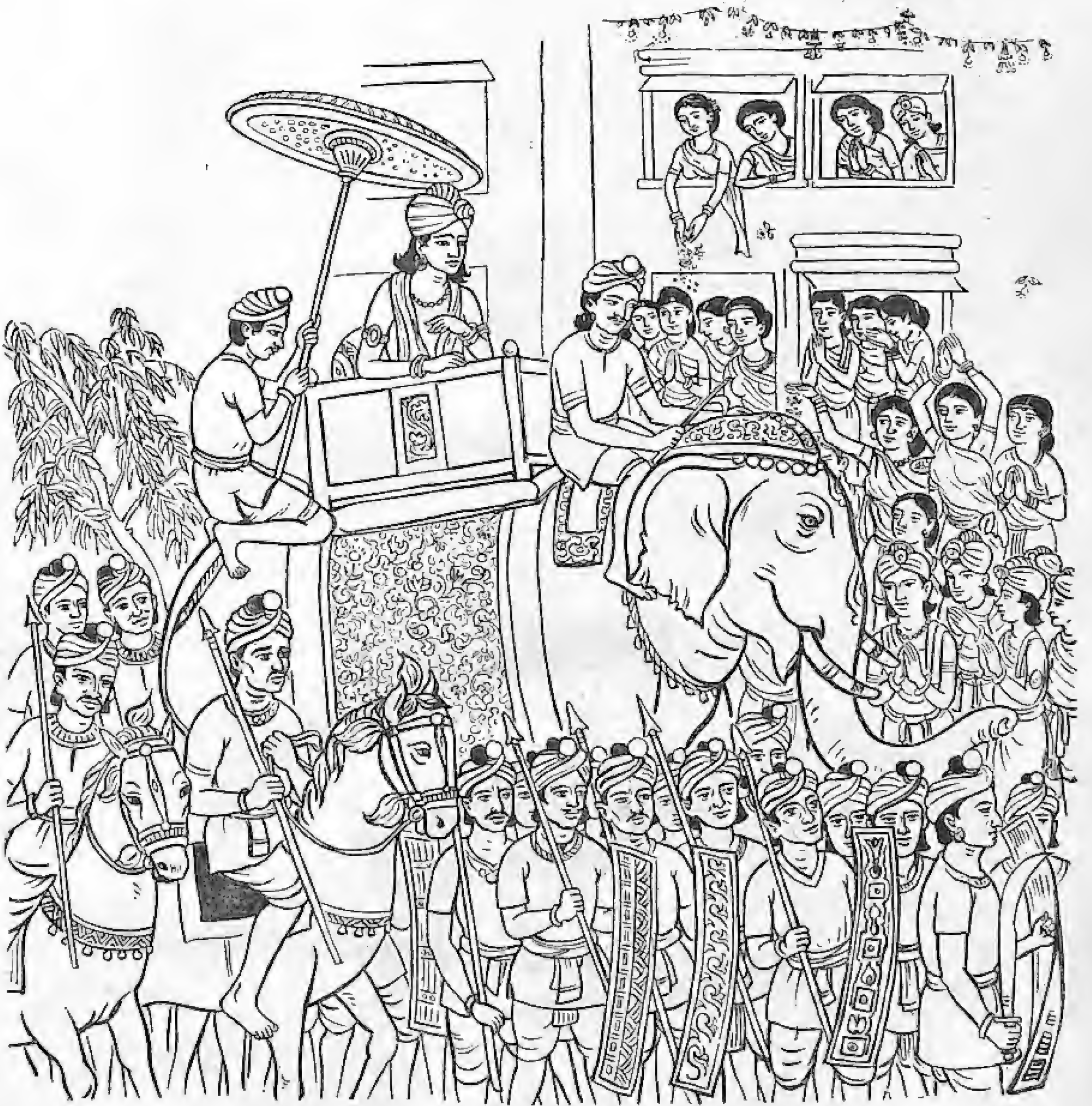
"कुमार जाओ और तक्षशिला का विद्रोह शांत करो ।"

सम्राट बिंदुसार ने अशोक को सेना तो दी, किन्तु युद्ध की आवश्यक सामग्री नहीं दी ।

अशोक और उनके साथी कई दिनों की यात्रा के उपरांत तक्षशिला पहुंचे । अशोक के आने की सूचना मिली तो तक्षशिला नगर के निवासियों ने दूर-दूर तक तक्षशिला के राजमार्ग को अच्छी तरह सजाया । पानी से भरे हुए घड़े लेकर उन्होंने उपराज अशोक का स्वागत किया ।

अशोक का स्वागत करके नगरवासियों ने विनम्रतापूर्वक निवेदन किया —

"तक्षशिला के नागरिक आपके या सम्राट के विरोधी नहीं हैं और न राजद्रोही हैं, किन्तु दुष्ट अमात्य ने तक्षशिला के नागरिकों पर अत्याचार किया और उनको



अशोक के आने की सूचना मिली तो तक्षशिला नगर के निवासियों ने कोसों दूर-दूर तक तक्षशिला के राज-मार्गों को अच्छी तरह सजाया

अपमानित किया। हम शांति चाहते हैं तथा तक्षशिला के लिए योग्य शासक चाहते हैं।

वे उपराज अशोक की अगवानी कर बड़े सत्कार के साथ नगर में लिवा ले गए।

अशोक के वहां पहुंचने भर की देरी थी तक्षशिला में पूर्ण शांति स्थापित हो गई। उन्होंने वहां की जनता का हृदय जीत लिया। इससे पहले अशोक का बड़ा भाई सुसीम ही वहां का शासक था। तब भी इसी प्रकार विद्रोह हुआ था। उसे शांत करने में सुसीम असफल रहा था। अशोक एक कुशल राजनीतिज्ञ था। शायद जनता इस बात को भली प्रकार जानती थी। यही कारण रहा कि तक्षशिला के लोगों ने उनका स्वागत किया।

अशोक वहीं बहुत दिन बसे नहीं रहे। तक्षशिला का उपद्रव शांत कर शांति स्थापित की और पाटलिपुत्र लौट आए। वे पाटलिपुत्र भी अधिक नहीं रुके। कुछ ही दिन राजधानी में विश्राम कर वे उज्जैन रवाना हुए। विदिशा से रानी देवी को साथ ले वे उज्जैन पहुंचे और राजकार्य में लग गए।



9 सम्राट बिंदुसार की मृत्यु

सम्राट बिंदुसार, मौर्य साम्राज्य के दूसरे प्रतापी शासक, मरणासन्न थे। उस अवस्था में न सुसीम उनके पास था और न ही अशोक। अंतिम सांस लेने से पहले सम्राट अपना राज-मुकुट सुसीम के सिर पर रखना चाहते थे। वे उसी को सम्राट बनाना चाहते थे। उस समय सुसीम सुदूर कश्मीर में था। यदि चाहते तो अमात्यगण उसको बुला भेजते किन्तु वे चाहते थे कि अशोक ही सम्राट बने। इसलिए उन्होंने अशोक को उज्जैन से तुरंत पाटलिपुत्र आने का संदेश भेजा। अशोक जरा भी विलंब किए बिना राजधानी आ पहुंचे।

अंतिम समय समीप आया जान राजा बिंदुसार ने अपने चारों ओर देखा। उन्हें अशोक ही दिखाई दिया। सुसीम का कहीं पता नहीं। सम्राट बिंदुसार ने अपने सिर का राजमुकुट उतारा और अशोक के सिर पर रखा। ई०पू० 273 में यह घटना हुई और अशोक संपूर्ण मौर्य साम्राज्य के सम्राट घोषित हुए।

सम्राट बिंदुसार की इच्छा के विपरीत राज्य के सभी अमात्यों के यत्न से अशोक को सम्राट का पद प्राप्त हुआ। अवंती और तक्षशिला में मिली सफलता से राज्य के अधिकारी उनसे प्रभावित थे। उनको अशोक की सामर्थ्य और शक्ति पर विश्वास था। इसी कारण उन्होंने सुसीम को न बुलाकर अशोक को बुला भेजा था।

उधर कुमार सुसीम को पिता के देहांत और पाटलिपुत्र में हुई ऊथल पुथल का समाचार मिला। उसे पूरा भरोसा था कि पिता उसे ही सम्राट बनाने वाला है। उसके पास जितनी भी सेना थी, वह उसे लिए तुरंत पाटलिपुत्र आ पहुंचा। अशोक ने पहले से पाटलिपुत्र पर पूर्ण अधिकार जमा लिया था। यह जान सुसीम को बड़ा क्रोध आया।

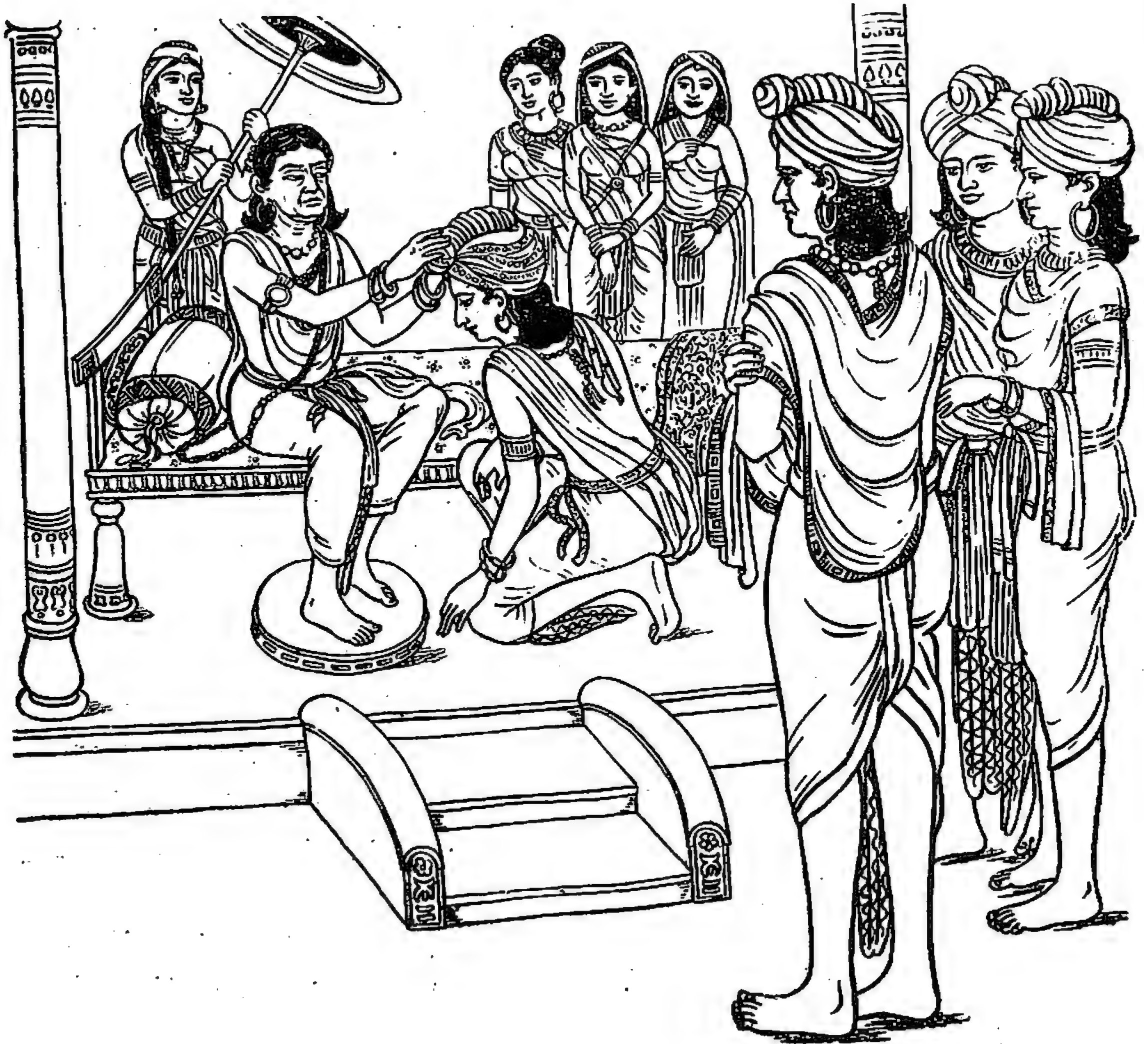
सुसीम के पाटलिपुत्र पहुंचने के पहले ही अशोक मुकाबले की सारी तैयारी कर चुके थे। जब कुमार सुसीम पाटलिपुत्र के समीप पहुंचा तो प्रधान अमात्य राधागुप्त ने उसे संदेशा भेजा—

"कुमार! यदि तुम अशोक को मारने में समर्थ हो तभी राज्य प्राप्त कर सकोगे। अन्यथा नहीं।"

9—572 एम् ऑफ आय एंड बी/81

अशोक उज्जैन के शासक रह चुके थे । इसलिए दक्षिण की सारी शक्तिशाली सेना उनके अधीन थी । इसके अलावा पाटलिपुत्र की सेना पर भी उन्हीं का प्रभुत्व था ।

कुमार सुसीम तक्षशिला एवं कश्मीर के विद्रोह को शांत करने में सफल नहीं हुआ था, अतः वह उत्तर-पश्चिम की सेनाओं का भी राजगद्दी प्राप्त करने में उपयोग नहीं कर सका ।



सम्राट बिंदुसार ने अपना राजमुकुट उतारा और अशोक के सिर पर रखा

10 सत्ता के लिए भाइयों में युद्ध और अशोक का राज्याभिषेक

उत्तराधिकार प्राप्त करते ही ज्येष्ठ भाई सुसीम के साथ संघर्ष करना पड़ेगा, यह बात अशोक पहले से जानते थे। अतः उन्होंने सब प्रकार तैयारी कर रखी थी।

सुसीम जब पाटलिपुत्र पहुंचा तो उसे नगर के प्रवेश द्वार पर ही अशोक के सैनिकों से जूझना पड़ा। उसके पास बहुत थोड़ी सेना थी। अशोक के सैनिकों के सामने वह अधिक देर तक नहीं टिक सका। अंत में सुसीम को हार माननी पड़ी। इस गृहयुद्ध में ही वह अशोक के द्वारा मारा गया।

पुरानी कथाओं में कहा गया है कि सम्राट बिंदुसार की अन्य रानियों से उत्पन्न अशोक के सौ भाई थे। जो भाई सुसीम के साथी थे, ऐसे भाईयों में से अधिकांश भाई अशोक के द्वारा मारे गये। जो भाई अशोक के साथ थे उन्हीं का बाल बांका नहीं हुआ। इतिहास के विद्वानों का ख्याल है कि पुरानी कथाओं में बिंदुसार के पुत्रों की संख्या बढ़ा-चढ़ाकर बताई गई है। वास्तव में उसके इतने पुत्र न थे।

अशोक ने अपने सभी भाइयों को नहीं मरवाया था। राज्याभिषेक के सोलहवें तथा सत्रहवें वर्ष में भी अशोक के भाई तथा बहनों के परिवार पाटलिपुत्र एवं अन्य बड़े नगरों में बसे हुए थे। अशोक ने अपने पांचवें शिलालेख में इस बात का उल्लेख किया है।

सुसीम कुमार अपने कई दूसरे भाइयों के साथ मारा गया था। उस समय उस की रानी सुमना देवी गर्भवती थी। वह भागकर गरीबों की बस्ती में चली गई। वहां एक न्यग्रोध (वट) वृक्ष के नीचे उसने एक पुत्र को जन्म दिया। न्यग्रोध वृक्ष के नीचे जन्म लेने के कारण उस बालक का नाम न्यग्रोध कुमार रखा गया।

एक दिन उस गांव के चौधरी ने सुमना देवी को देखा। उसने देवी को पहचाना। वह माता-पुत्र दोनों को अपने घर ले गया। सात साल तक उसने दोनों की सेवा की।

एक दिन महावरुण नामक बौद्ध भिक्षु ने न्यग्रोध कुमार को देखा। उसने कुमार की माता सुमना देवी से आज्ञा ली और उसे प्रव्रजित किया (भिक्षु बनाया)। बाद में इसी न्यग्रोध श्रामणेर का उपदेश सुनकर सम्राट अशोक की बौद्ध धर्म में आस्था हुई।

सम्राट बिंदुसार की मृत्यु के समय अशोक की उम्र 21 साल की थी। वैसे तो वे उसी समय मौर्य साम्राज्य के सम्राट बन गए थे। किन्तु अभी उनका विधिवत राज्याभिषेक नहीं हुआ था। चार साल बाद उनका विधिवत अभिषेक (ई०पू० 268) हुआ तभी से उनका शासन-काल गिना जाने लगा।

जिस प्रकार पाटलिपुत्र में अशोक ने अपने भाइयों से घनघोर युद्ध कर विजय प्राप्त की, उसी तरह उन्हें राज्य के विभिन्न भागों में बिखरे हुए अपने विरोधियों से भी संघर्ष करना पड़ा। इस में उन्हें चार वर्ष लग गए। यही कारण था कि उन्होंने सम्राट बन जाने के भी चार वर्ष बाद अपना राज्याभिषेक कराया। उस समय तक उनके विरोधी खतम हो चुके थे।

अशोक बचपन से ही कठोर तथा क्रूर स्वभाव के थे। सत्ता हाथ में आने पर उनमें कठोरता की मात्रा और भी अधिक बढ़ गई थी। उन्होंने अपनी कार्य-सिद्धि के लिए अपने भाइयों तक को मृत्यु के घाट उतार दिया था। इन्हीं सब कारणों से यह चण्डाशोक के नाम से प्रसिद्ध हुए थे।

यदि अशोक इस प्रकार की कठोरता का बर्ताव न करते तो शायद ही वे मौर्य साम्राज्य के सम्राट बन पाते। अशोक का नाम सुनते ही राज्य के उच्च अधिकारी घबराते थे। यही कारण था कि तक्षशिला में जहां सुसीम कुमार शस्त्रों के बल पर भी विद्रोह शांत न कर सका था, वहां केवल अशोक की उपस्थिति मात्र से विद्रोह शांत हो गया था और वहां की जनता उनके पक्ष में हो गई थी।

11 कलिंग विजय

अशोक बड़े ही महत्वाकांक्षी सम्राट थे। उनकी साम्राज्य विस्तार की नीति उनके पूर्वजों के समान ही थी। उन्होंने विदेशी शासकों के साथ मित्रता रखी। विदेशों के राजदूत पहले ही की तरह पाटलिपुत्र दरबार में आते रहे।

सम्राट अशोक ने उन प्रदेशों को मौर्य साम्राज्य में मिलाने का प्रयत्न किया जो अभी पूर्ण रूप से या आंशिक रूप से स्वतंत्र चले आए थे। गद्दी पर बैठने के बाद सर्वप्रथम सम्राट अशोक का ध्यान कश्मीर पर गया। चन्द्रगुप्त मौर्य और बिंदुसार के समय में कश्मीर पूर्ण रूप से मौर्य साम्राज्य के अधीन नहीं हो पाया था। अशोक ने कश्मीर पर आक्रमण किया और उसे अपने साम्राज्य में मिलाकर उस पर अपनी पूर्ण सत्ता स्थापित की।

कश्मीर के इतिहास में अशोक को मौर्य वंश का प्रथम सम्राट कहा गया है। इससे भी स्पष्ट है कि कश्मीर की विजय का श्रेय अशोक को ही है।



कलिंग युद्ध

10—572 एम् ऑफ़ आय अंड बी/81

मौर्य साम्राज्य का विस्तार बहुत बढ़ गया था। किन्तु अभी भी उसका पड़ोसी कलिंग (ओड़िसा) राज्य स्वतन्त्र चला आ रहा था। कलिंग राज्य भारत के किनारे पर महानदी, गोदावरी और कृष्णा नदी के बीच का प्रदेश था। उसकी पूर्वी सीमा पर बंगाल की खाड़ी और शेष तीनों ओर से मौर्य साम्राज्य की सीमाएं थीं। बिंदुसार ने अपने समय में कलिंग को अपनी सेनाओं से तीनों तरफ से घेर लिया था फिर भी कलिंग की शक्ति के सामने वह उस पर हाथ नहीं उठा सका।

कलिंग एक समृद्ध राज्य था, धन–धान्य से भरा। बर्मा और दक्षिण-पूर्व एशिया के साथ उसके व्यापारिक संबंध थे। हाथी दांत के सामान के लिए भी कलिंग प्रसिद्ध था। वहां हाथी बड़ी संख्या में हुआ करते थे। उस समय के युद्धों में हाथी बहुत काम आते थे। जिस समय अशोक ने कलिंग पर आक्रमण किया, उस वक्त उसके पास 60,000 पैदल सेना, 1,000 घुड़सवार तथा 700 हाथी थे। हाथी पर कई योद्धा बैठकर तीर धनुष और भालों से लड़ते थे।

राज्याभिषेक के आठवें वर्ष में अशोक ने कलिंग विजय का निश्चय करते ही एक विशाल सेना लेकर उस पर आक्रमण कर दिया। अशोक की सेना से कलिंग चारों ओर से घिर गया। कलिंग की सेना और जनता ने मौर्य सेना का वीरता से सामना किया। अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करने के लिए वे वीर सैनिक आखिरी घड़ी तक उत्साह के साथ लड़ते ही रहे।

सम्राट अशोक की विजय हुई और कलिंग की पराजय। कलिंग भी मौर्य साम्राज्य का एक अंग बन गया।

इस भयानक युद्ध में जन-हानि और धन–हानि दोनों काफी मात्रा में हुई, माताओं के पुत्र मारे गए, पत्नियों के पति नहीं रहे और बच्चों के पिता परलोक सिधार गये। जो लोग देश के लिए लड़ते–लड़ते वीर-गति को प्राप्त हुए तथा जो दूसरे लोग इस युद्ध की आग में जल मरे, वे उन जीवित लोगों से अच्छे ही रहे, जिनके रहने को घर, खाने को अन्न, और पहनने को वस्त्रों का अभाव हो गया। घायल लोगों की हालत और भी दयनीय थी। वे तन और मन दोनों से आहत हुए थे।

यह कलिंग-युद्ध अशोक के जीवन का अंतिम संग्राम था। इस युद्ध में 1,52,000 व्यक्ति मौर्य-सैनिकों द्वारा बंदी बनाकर ले जाए गए और उससे अधिक घायल होकर भूख तथा बीमारी से मरे।



अशोक के हृदय पर इस युद्ध की विभीषिका का गहरा प्रभाव पड़ा

अशोक के हृदय पर इस युद्ध की विभीषिका का गहरा प्रभाव पड़ा। इससे उस क्रूर सम्राट का जीवन ही बदल गया। वह युद्ध क्या था एक ज्वालामुखी का फट पड़ना था। माताओं और बच्चों की दर्द भरी चीत्कारें, अशोक के कानों में गूंजने लगीं। सोते जागते उन्हें युद्ध विभीषिका ही दिखाई देने लगी। उन्हें इसका बड़ा पश्चात्ताप हुआ। सम्राट अशोक बेचैन हो उठे। उनके मन में किसी भी प्रकार की शांति नहीं रही। कलिंग पर विजय प्राप्त करने के बावजूद अशोक को लग रहा था कि वे इस युद्ध में बुरी तरह हार गए।

अशोक हार मानने वाले नहीं थे। उन्होंने इस पराजय को विजयश्री में बदल देने का निश्चय किया।

12 अशोक की धर्म दीक्षा

यह आप जानते ही हैं कि अशोक का सौतेला भाई सुसीम युद्ध में अशोक द्वारा मारा गया था और सुसीम के पुत्र न्यग्रोध कुमार ने बौद्धश्रमण की दीक्षा ली थी। वहीं न्यग्रोध श्रामणेर एक दिन हाथ में भिक्षा पात्र लिए भिक्षाटन के उद्देश्य से शांत भाव से सम्राट अशोक के महल के सामने से गुजर रहा था। उस समय अशोक खिड़की के पास बैठे महामार्ग पर नजर जमाए थे। उनका मन अशांत था, और वे शांति की खोज में थे। उन्होंने शांत भाव से चले जा रहे उस छोटे श्रमण को देखा। सम्राट के हृदय में उसके प्रति प्रेम उमड़ आया। अशोक के मेघाच्छन्न हृदय पर मानो प्रकाश की बिजली कौंध गई। प्रेमाकुल होकर उन्होंने उस श्रामणेर को पास बुलाया और विनम्रता पूर्वक कहा—

"भंते ! उचित आसन ग्रहण करें।"

श्रामणेर राजसिंहासन की ओर बढ़ा। उसकी निर्भयता देख सम्राट को बहुत आश्चर्य हुआ। श्रामणेर के प्रति उनके मन में अपनत्व की भावना जाग्रत हुई। वह सिंहासन के पास पहुंचा तो सम्राट अशोक ने कहा "यह श्रामणेर मेरे हृदय सिंहासन पर आसीन होकर रहेगा।"

अशोक के हाथ का सहारा लेकर वह सिंहासन पर चढ़ा और श्वेत छत्र के नीचे विराजमान हुआ। उसे राजगद्दी पर बैठे देख अशोक को बड़ा संतोष प्राप्त हुआ। उन्होंने श्रामणेर का योग्य सत्कार किया। अपने लिए बने भोजन में से उसे भोजन कराया।

भोजन कर चुकने पर अशोक ने भगवान बुद्ध द्वारा उपदिष्ट धर्म के संबंध में कुछ प्रश्न पूछे। उत्तर में न्यग्रोध श्रामणेर ने अप्पमाद-वग्ग (अप्रमाद-वर्ग, धम्मपद) का उपदेश दिया। उसे सुनकर अशोक ने उसी समय बौद्ध धर्म की दीक्षा ग्रहण करने की प्रतिज्ञा की।

न्यग्रोध श्रामणेर चलने के लिए उठा तो अशोक ने कहा—

"तात् ! आठ भात (आठ जनों का भोजन) देता हूं।"

श्रामणेर ने कहा— "मैं उसे अपने उपाध्याय को समर्पित करता हूं।"

अशोक ने पुनः कहा— "मैं फिर आठ भात देता हूं।"



वह श्रामणेर मेरे हृदय सिंहासन पर आसीन होकर रहेगा

श्रामणेर बोला—"मै उसे अपने आचार्य को अर्पण करता हूं ।"

"मैं और आठ भात देता हूं ।"

"मैं उसे भी भिक्षु संघ को समर्पित करता हूं ।"

सम्राट ने फिर आठ जनों का भोजन स्वीकार करने को कहा ।

बुद्धिमान श्रामणेर ने उसे स्वीकार कर लिया ।

दूसरे दिन दोपहर भोजन के समय बत्तीस भिक्षुओं को साथ लिए श्रामणेर राजमहल पहुंचा । सम्राट अशोक ने अपने हाथों से सबको भोजन परोसा । भोजनान्तर धर्म उपदेश हुआ, जिस के बाद अशोक ने अपने परिवार सहित बुद्ध धर्म की शरण ग्रहण की । उसी दिन सम्राट अशोक ने प्रतिज्ञा की—

"मैं आज से शस्त्र द्वारा विजय प्राप्त न कर, दया, शांति और अहिंसा के द्वारा विजय प्राप्त करूंगा ।"

सम्राट अशोक ने हमेशा के लिए शस्त्रों का त्याग कर दिया । संसार के इतिहास में ऐसा दूसरा शासक नहीं मिलेगा, जिसने युद्ध में विजय प्राप्त करने के बाद युद्ध का त्याग किया हो । ऐसे राजा तो बहुत मिलेंगे जो पराजित होने के कारण युद्ध से विमुख हो गए ।

जिस दिन अशोक ने प्रतिज्ञा करके शस्त्रों का त्याग किया वह दिन धर्म-विजय के नाम से मनाया जाने लगा । अनेक लोग उसे विजयादशमी कहते हैं । आज भी भारतीय बौद्ध प्रतिवर्ष उस विजयादशमी को मनाते हैं ।

इसके बाद से चंडाशोक धर्माशोक के नाम से अमर हुए । उन्हें देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी-अशोक की उपाधि मिली ।

इतिहास प्रसिद्ध महास्थविर मोग्गलिपुत्र तिष्य अशोक के गुरु थे । उनसे अशोक ने बौद्ध-धर्म का गम्भीर ज्ञान प्राप्त किया ।

13 मौर्य साम्राज्य का विस्तार

कलिंग-विजय के पश्चात् मौर्य साम्राज्य अपने विकास की चरम सीमा पर पहुंचा। कलिंग-विजय के बाद सम्राट अशोक ने अन्य किसी भी राज्य या प्रदेश पर आक्रमण नहीं किया। अब उन्हें अपना साम्राज्य बढ़ाने की तनिक भी कामना नहीं थी। युद्ध से उनका मन ऊब चुका था।

कलिंग के आस-पास बहुत सी जंगली जातियां रहती थीं। उन्हें काबू में लाने के लिए सम्राट अशोक के राज-कर्मचारियों ने जब उनसे आज्ञा मांगी तो उन्होंने आदेश दिया कि उन्हें धर्म-मार्ग द्वारा ही वश में किया जाए।

अशोक का मौर्य साम्राज्य उत्तर-पश्चिम में हिन्दुकुश तक फैला हुआ था। अशोक के पितामह को सैल्यूकस निकेटर द्वारा दिए गए चारों प्रांतों पर उन्हीं का शासन था। दक्षिणी अफगानिस्तान और सीमा प्रदेश की भूमि अशोक के साम्राज्य में बनी रही। कश्मीर भी अशोक के राज्य में ही था। श्रीनगर अशोक का ही बनवाया हुआ नगर है।

दक्षिण-पश्चिमी भारत में सौराष्ट्र (गुजरात) पर भी अशोक का ही शासन था अर्थात् समुद्र तक उनका राज्य था।

उत्तर में अशोक की सत्ता हिमालय पर्वत तक फैली हुई थी। आज के नेपाल की भूमि उनके साम्राज्य में शामिल थी। कहा जाता है कि वहां सम्राट ने ललितपुर नाम का नगर बसाया था जो आज भी विद्यमान है। अशोक के बनवाए स्तूप एवं विहार भी वहां पाए जाते हैं। वहां स्वयं सम्राट अशोक अपने पुत्री चारुमति तथा जामात देवपाल के साथ गए थे। आज उस नगर को पाटन भी कहते हैं।

पूर्व-उत्तर में उनके राज्य में संपूर्ण बंगाल सम्मिलित था। पूर्व में समुद्र तट तक उन्हीं का प्रभुत्व था। दक्षिण में मद्रास राज्य तथा मैसूर राज्य के भाग भी उनके साम्राज्य में थे।

अशोक का विशाल साम्राज्य पूर्व में बंगाल से उत्तर-पश्चिमी में हिन्दुकुश तक और हिमालय की तराई से दक्षिण में चीतलद्रुम जिले तक फैला था। इसमें दो समुद्र-तटवर्ती भूभाग, पश्चिम में सौराष्ट्र तथा पूर्व में कलिंग भी शामिल था।

वास्तव में सम्राट अशोक का साम्राज्य बहुत ही विशाल था। अशोक के पहले और बाद कोई भी सम्राट इतने विस्तृत साम्राज्य का स्वामी नहीं बना। अशोक का यह कथन कितना सत्य, कितना प्रामाणिक और कितना यथार्थ है।

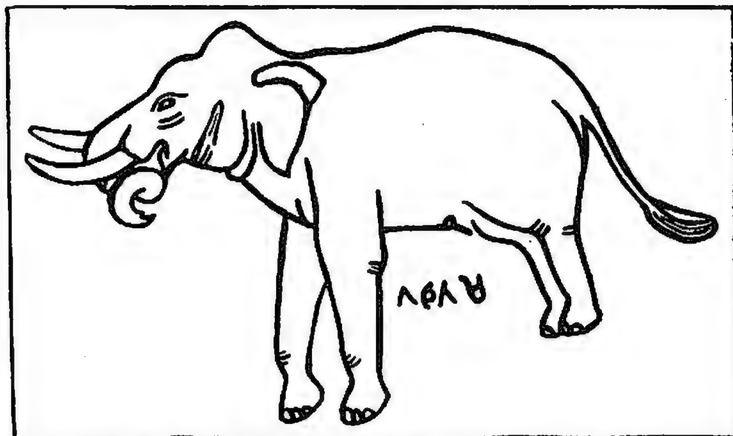
अशोक का कथन था कि उसका साम्राज्य सुविस्तृत है।



14 अशोक के शिलालेख

शिला कहते हैं पत्थर की चट्टान को और लेख कहते हैं किसी भी लिखित सामग्री को। इन्हीं शिला और लेख शब्दों को मिलाकर एक शब्द बना शिलालेख, अर्थात शिलाओं पर लिखे गए लेख। इस प्रकार के शिलालेख सम्राट अशोक ने अपने सम्पूर्ण साम्राज्य में बड़ी-बड़ी चट्टानों तथा पत्थरों के स्तंभों पर खुदवाए थे।

इतिहास की दृष्टि से अशोक के शिलालेखों का महत्व बहुत अधिक है। इन्हीं शिलालेखों के आधार पर हम उस समय की राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थिति का सही-सही ज्ञान प्राप्त करते हैं। उन्हीं के आधार पर हमें अशोक की जीवन संबंधी बहुत सी बातों की जानकारी मिलती है और इन्हीं शिलालेखों से हमें अशोक के मौर्य साम्राज्य की सीमाओं के बारे में ठीक ज्ञान होता है। इन्हीं से हम यह भी जान लेते हैं कि सुदूर दक्षिण के प्रदेशों को छोड़ शेष समस्त भारतवर्ष उसके अधिकार में था। इनसे यह भी पता चलता है कि विदेशी राजाओं के साथ अशोक के संबंध किस प्रकार के रहे।



कालसी की चट्टान पर खुदी हुई हाथी की आकृति (गजोतम)

इन शिलालेखों ने सम्राट अशोक की धार्मिक नीति को स्पष्ट किया है। इनसे पता चलता है कि धर्म के बारे में अशोक के क्या विचार थे। इन लेखों द्वारा अशोक की राजाज्ञाएं प्रसारित हुई हैं। जिनसे अशोक के चरित्र और उसकी कार्यपद्धति पर भी यथार्थ प्रकाश पड़ता है। हमें इन शिलालेखों द्वारा यह भी मालूम होता है कि अशोक के राज्य का शासन किस तरीके से होता था।

इन शिलालेखों द्वारा ही सम्राठ की आज्ञाएं और धार्मिक एवं नैतिक शिक्षाएं जन-साधारण में प्रचारित की जा सकीं। उस युग में छापेखाने नहीं थे। अशोक ने अपनी समस्त आज्ञाओं को इन शिलालेखों पर ही अंकित कराया।

इन शिलालेखों में मनुष्य के सामान्य कर्तव्यों तथा आवश्यक धार्मिक सिद्धान्तों का समावेश हुआ है। अमुक आदमी का अमुक आदमी के प्रति क्या कर्तव्य होना चाहिए यह इन शिलालेखों तथा-स्तंभ लेखों में स्पष्ट रूप से बताया गया है। जैसे पिता को पुत्र के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए या पुत्र को पिता के साथ किस प्रकार का बर्ताव करना चाहिए अथवा पति और पत्नी को एक दूसरे के प्रति क्या व्यवहार करना चाहिए। थोड़े में यह कहना अनुचित नहीं होगा कि उनमें मानव धर्म और बौद्ध धर्म का निचोड़ या सार उत्कीर्ण किया गया है।

अब तक अशोक के जितने भी शिलालेख मिले हैं उन्हें विद्वान लोग तिथि-क्रम के अनुसार आठ भागों में बांटते हैं।

1. लघु-शिलालेख—ये छोटे अभिलेख 12 स्थानों से मिले हैं। गुजरा और मास्की वाले लेखों पर अशोक का नाम भी खुदा हुआ है। दूसरे लेखों में इनका नाम न लेकर केवल देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी ही लिखा है।

2. भबरू-शिलालेख—यह वैराट जयपुर म ही मिला है।

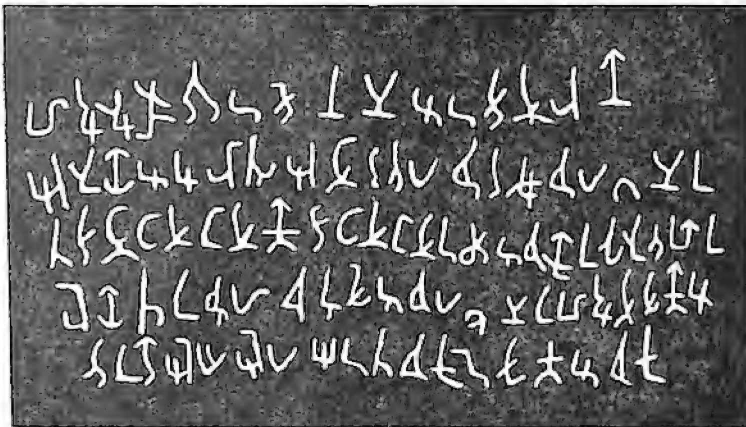
3. चतुर्दश-शिलालेख—ये शिलालेख लगभग 253 ई० पू० में लिखे गए। इनमें चौदह प्रज्ञापन होने के कारण ये चतुर्दश शिलालेख कहलाते हैं। ये आठ स्थानों से मिले हैं।

4. कलिंग-लेख—ये दो शिलाओं पर मिले हैं। ये भी 253 ई० पू० के ही माने जाते हैं।

5. गुहा-लेख—ये तीन लेख बिहार राज्य के गया जिले की बराबर पहाड़ी गुफाओं में उत्कीर्ण हैं। इनका समय 257 ई० पू० से 250 ई० पू० हैं।

6. तराई-स्तम्भ-लेख—ये नेपाल के लुंबिनी और निलीव ग्राम से मिले हैं। इनका समय 249 ई० पू० का माना जाता है।

7. स्तंभ-लेख—ये छह स्थानों पर पाये गये हैं। इनके निर्माण का समय 243-242 ई० पू० का बताया जाता है।



अशोक के धर्मलेख (शाहबाज गढ़ी)

8. लघु स्तंभ लेख–ये संख्या में चार हैं और सारनाथ, सांची तथा प्रयाग से मिले हैं। इनका समय 242 ई० पू० से 232 ई० पू० तक निर्धारित किया गया है।

तीन शिलालेखों को छोड़ शेष सभी की भाषा मागधी या पालि है। यह भाषा उस समय की जनसाधारण की बोलचाल की भाषा थी। इसी भाषा में भगवान बुद्ध ने उपदेश दिये थे। बाद में इसी में उनके उपदेश लिपिबद्ध किए गए।

जिस लिपि या जिन अक्षरों में अशोक के ये शिलालेख खुदवाये गए हैं, उन्हें ब्राह्मी लिपि कहते हैं। यह लिपि कहीं बाहर से नहीं आई। भारतवर्ष में ही पुराने भारतीय आर्यों द्वारा इसका आविष्कार हुआ है। अशोक के समय में इसका बहुत कुछ विकास हो चुका था। इसी ब्राह्मी लिपि से हमारी आज की देवनागरी (हिन्दी की लिपि) बनी है। इसी प्रकार यही लिपि समस्त भारत की भाषाओं की लिपि और सिंहल द्वीप की भाषा की लिपि की भी जननी है। नीचे दिए गए ब्राह्मी-अक्षरों से यह बात स्पष्ट होगी कि उससे देवनागरी लिपि का विकास कैसे हुआ है?

अ = अ
क = + क

इसी प्रकार दूसरे अक्षरों और उनकी मात्राओं का भी विकास हुआ। इनको विकसित होने में बहुत वर्ष लगे। धीरे-धीरे हमें आज की हिंदी की वर्णमाला प्राप्त हुई। क्योंकि धर्म को प्रमुख रखकर ही अशोक ने इन शिलालेखों को लिपिबद्ध कराया था, इसीलिए ये धर्म लेख भी कहलाते हैं।

15 धर्म विजय के लिए धर्मयात्राएं

अशोक के पूर्वजों ने तथा अशोक ने अपने आरंभिक जीवन में राज्यविस्तार आक्रमणों द्वारा किया था। किन्तु बौद्ध धर्म स्वीकार करने के बाद सम्राट अशोक ने विहार-यात्रा, मग-यात्रा एवं विजय-यात्रा छोड़कर 'धर्म विजय के लिए' धर्म-यात्रा शुरू की।

धर्म-विजय के लिए अशोक ने सबसे पहले अपनी प्रजा के जीवन में सुधार किया। भारत में यज्ञों के नाम पर जो पशु हिंसा प्रचलित थी, सम्राट अशोक ने उसे बंद करने का प्रयास किया—"यहां किसी प्राणी को हत्या कर यज्ञ होम न करना चाहिए और न समाज (मेला) ही करना चाहिए। देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी राजा समाज में बहुत दोष देखता है।" सम्राट कहते हैं—"प्रियदर्शी राजा के रसोई घर में शोरबे के लिए प्रतिदिन सैंकड़ों, हजारों जानवर मारे जाते थे। पर अब जब यह धर्म-लिपि लिखी गई, केवल तीन जीव, दो मोर और एक मृग ही मारा जाता है। वह मृग भी हमेशा नहीं मारा जाता, भविष्य में ये तीन जीव भी नहीं मारे जाएंगे।"

अशोक ने मनुष्यों एवं पशुओं की सुविधा के लिए अपने संपूर्ण राज्य में सड़कों के दोनों ओर पेड़ लगवाए, जगह-जगह पर कुएं खुदवाए और पशु औषधालय खुलवाए।

अशोक ने धार्मिक त्योहारों के दिन, पूर्णिमा, अमावस्या व दोनों अष्टमियों के दिन पशुओं को मारना, मछली पकड़ना तथा जानवरों को दागना मना किया। इन सब आदेशों का प्रयोजन यही था कि व्यर्थ में हिंसा न की जाए और लोग दया और अहिंसा अपनाएं। सम्राट अशोक अपने सारे राज्य को एक धार्मिक एवं धर्मनिष्ठ राज्य के रूप में देखना चाहते थे।

इस धर्म–विजय के लिए अशोक ने धर्म-यात्राएं आरंभ कीं। यात्राएं तो उनके पहले के सम्राटों ने भी की थीं, किंतु उनका अभिप्राय होता था– आनंद मनाना तथा मौज करना। अशोक की धर्म-यात्राओं में शिकार खेलने आदि में व्यर्थ समय न गंवाकर, श्रमण ब्राह्मण और वृद्धों से भेंट की जाती थी तथा उन्हें दान दिया जाता था और जनता को धर्म की बातें बताई जाती थीं। अशोक को इस प्रकार की धर्म-यात्राओं से बहुत आनंद मिलता था। इससे उन्हें अपनी आंखों से जनता का हाल देखने का मौका मिलता था।

अशोक की धर्म-यात्राएं राज्याभिषेक के बीसवें वर्ष (ई० पू० 248) में आरंभ हुईं उनके साथ उनके सामंत, अमात्य रहते, हाथी, घोड़े रहते, मूर्तिकार, तथा अन्य विद्याओं के जानकार रहते। सम्राट की रानियां तथा पुत्र आदि रिश्तेदार भी साथ हुआ करते। यह यात्रा एक प्रकार की तीर्थयात्रा हुआ करती थी।

अशोक, अपने गुरु मोग्गलिपुत्र तिष्य के उपदेशानुसार, आचार्य उपगुप्त के मार्ग-दर्शन में सर्वप्रथम भगवान बुद्ध के जन्म-स्थान लुंबिनी गए। वहां जहां भगवान बुद्ध का जन्म था, अशोक ने उस स्थान की पूजा की और एक शिला-स्तंभ पर अभिलेख खुदवाया, उस में सम्राट अशोक कहते है—

"देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने राज्याभिषेक के बीस वर्ष बाद स्वयं आकर इस स्थान की पूजा की। यहीं शाक्य मुनि बुद्ध का जन्म हुआ था। इसलिए यहां पत्थर का एक विशाल स्तंभ और एक बड़ी दीवार खड़ी की गई...।" लुंबिनी में सम्राट ने बहुत दिन पुण्य किया और उस गांव का कर माफ कर दिया।

लुंबिनी से अशोक कपिलवस्तु गए। वह भगवान बुद्ध के पिता राजा शुद्धोदन की राजधानी थी। कपिलवस्तु में ही सिद्धार्थ गौतम बुद्ध का बचपन बीता था।

वहां से अशोक ने बुद्धगया को प्रस्थान किया। यह स्थान गया शहर के पास ही है। वहां सम्राट नें बोधिवृक्ष की पूजा की। इसी वृक्ष के नीचे सिद्धार्थ गौतम को ज्ञान प्राप्त हुआ था। इसके बाद से ही वे बुद्ध कहलाए। सम्राट बोधिवृक्ष के प्रति बहुत प्रेम और श्रद्धा रखते थे। कहा जाता है कि उनकी रानी तिष्यरक्षिता से यह देखा नहीं गया। ईर्ष्या के कारण उसने बोधिवृक्ष को कटवा डाला।

अशोक ने बुद्धगया में एक भव्य विहार (मंदिर) बनवाया। वह आज भी विद्यमान है। उन्होने वहां एक लाख सुवर्ण मुद्राएं दान दी थीं।

आचार्य उपगुप्त सम्राट को बुद्धगया से सारनाथ (बनारस) ले गए। सारनाथ बनारस से छह मील पर है। बुद्धत्व प्राप्ति के उपरान्त भगवान बुद्ध ने इसी सारनाथ में वट-वृक्ष के नीचे बैठ सर्वप्रथम पांच भिक्षुओं को धर्मोपदेश दिया था। वह उपदेश-धर्म-चक्र प्रवर्तन के नाम से प्रसिद्ध है और वह दिन धर्मचक्र-प्रवर्तन दिवस के नाम से मनाया जाता है। उसी दिन भगवान बुद्ध ने एक नए धर्म का चक्र चलाया था। सम्राट ने यहां भी बहुत से ऐतिहासिक कार्य किए। स्तूप तथा विहार बनवाए। सबसे महत्व का कार्य था



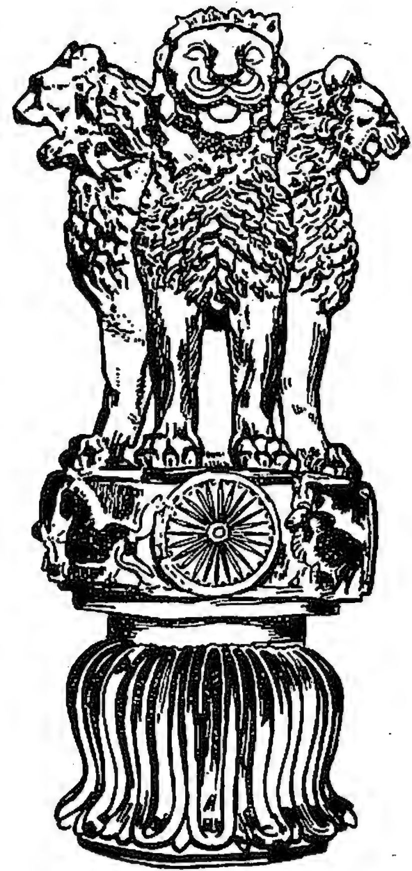
सम्राट ने बोधि वृक्ष की पूजा की। इसी वृक्ष के नीचे सिद्धार्थ गौतम को ज्ञान प्राप्त हुआ था

एक विशाल शिला-स्तंभ का गढ़वाना। उस शिला-स्तंभ पर उन्होंने एक लेख खुंदवाया। उस स्तंभ के ऊपरी हिस्से पर चारों दिशाओं में गर्जना करते चार सिंह बनवाए जो जीवित सिंहों जैसे जान पड़ते हैं। इसी स्तंभ का सिंह वाला शीर्ष–भाग भारत सरकार की राजमुद्रा है। हमारे नोटों पर भी यही छापा जाता है। ये चारों सिंह चारों दिशाओं में धर्म-गर्जना या सिंह–नाद करने वाले भगवान बुद्ध के प्रतीक हैं। स्तंभ के सिंह के नीचे का धर्म-चक्र, अशोक-चक्र भी कहलाता है।

सम्राट अशोक वहां से कुशीनगर पहुंचे। भगवान बुद्ध का जन्म लुंबिनी उद्यान में हुआ था। कपिलवस्तु में वे बड़े हुए। 29 वर्ष की उम्र में गृह त्याग तथा 6 वर्ष की साधना के पश्चात 35 वर्ष की अवस्था में बुद्ध गया में बुद्धत्व लाभ किया। सारनाथ में धर्म-चक्र प्रवर्तन हुआ। तब से 45 वर्ष तक घूम घूम कर लोगों को उपदेश दिया और 80 वर्ष की अवस्था में इसी कुशीनगर में वैशाख पूर्णिमा की रात को महापरिनिर्वाण को प्राप्त हुए अर्थात् उन्होंने देह त्याग दी। विश्वास किया जाता कि वैशाख–पूर्णिमा को ही भगवान बुद्ध का जन्म हुआ, वैशाख-पूर्णिमा के दिन ही उन्हें बुद्धत्व लाभ हुआ और वैशाख पूर्णिमा को ही महापरिनिर्वाण। सम्राट अशोक ने कुशीनगर में भी अनेक स्मारक बनवाए।

यहीं भगवान बुद्ध ने सेठ अनाथपिंडिक के जेतवन-बाग और विशाखा के चौविताराम में पच्चीस वर्षावास (चातुर्मास) बिताए थे।

कुशीनगर से सम्राट श्रावस्ती (सहेट–महेट) गए। सम्राट ने यहां उन स्थानों की पूजा की जहां बुद्ध भगवान् ठहरे थे। यहां भी सम्राट ने अनेक स्तूप स्मारक बनवाए। वहां से वैशाली गए और वहां भी एक शिला स्तंभ खड़ा करवाया, जिसके ऊपर सिंह बना हुआ है।



सारनाथ के विशाल शिला-स्तंभ का शीर्ष भाग। स्वतंत्रता के बाद भारत सरकार ने इसे राजमुद्रा के रूप में ग्रहण किया है।

कहा जाता है कि सम्राट नालंदा भी गए थे। वहां भगवान् बुद्ध के प्रधान शिष्य सारिपुत्र के चैत्य की उन्होंने पूजा की।

जहां–जहां भगवान बुद्ध या उनके प्रधान शिष्यों ने चारिका की थी, सम्राट ने उन सभी स्थानों की यात्रा की तथा उन–उन स्थानों पर स्तूपों, विहारों का निर्माण कराया और शिलालेख खुदवाए। जहां सम्राट नहीं जा सके, ऐसे दूसरे महत्व के स्थानों पर भी उन्होंने शिलालेख लगवाए।

अशोक ने अपनी प्रजा का हृदय, भय दिखा कर या दण्ड द्वारा नहीं जीता था, अपितु शान्ति एवं दया के द्वारा ही वे उनका प्रेम पाने में सफल हुए। अशोक ने अपनी सारी प्रजा को अपनी सन्तान समझा था और एक पिता के समान उसके प्रति वात्सल्य भाव रखते थे।



16 अशोक की राज्य-व्यवस्था

पाटलिपुत्र संपूर्ण मौर्य विजित साम्राज्य की राजधानी थी और अशोक उसके सम्राट। किन्तु पाटलिपुत्र से सारे राज्य का संचालन करना आसान नहीं था। तथा इसी कारण शासन की सुविधा के लिए सारे साम्राज्य के 6 हिस्से किए गए थे, जिन के नाम इस प्रकार हैं।

1. **उत्तरापथ**—इसमें कंबोज, गांधार, कश्मीर, अफगानिस्तान और पंजाब शामिल थे, इसकी राजधानी तक्षशिला थी।

2. **पश्चिमचक्र**—इस राज्य में काठियावाड, गुजरात से लेकर राजपूताना और मालवा के प्रदेश शामिल थे। इसकी राजधानी उज्जैन थी।

3. **दक्षिणापथ**—विंध्याचल पर्वत-माला का दक्षिण-भाग जिसमें सारा महाराष्ट्र तथा दक्षिण भारत का कुछ हिस्सा भी मिला हुआ था। इसकी राजधानी सुवर्णगिरी थी।

4. **कलिंग**—सम्राट अशोक ने अपने नए जीते हुए प्रदेश को एक अलग राज्य बना कर रखा था, जिसकी राजधानी तोसाली थी।

5. **मध्यदेश**—इसमें वर्तमान बिहार, उत्तर प्रदेश और बंगाल था। इसकी राजधानी पाटलिपुत्र थी।

इन प्रदेशों का शासन संभालने के लिए प्रायः राजकुल के कुमार ही उपराज पद पर नियुक्त होकर जाते थे। वे उन-उन राज्यों के अमात्यों की मदद से वहां की राज्य व्यवस्था देखते थे। स्वयं अशोक अपने पिता के राज्य-काल में उज्जैन के और अशोक के पुत्र कुमार कुणाल राजा बनने के पहले तक्षशिला के उपराज रह चुके थे। एक-एक राज्य में अनेक शासन-केंद्र हुआ करते थे, जिनमें कुमारों के अधीन रह महामात्य शासन करते थे। उदाहरण के लिए तोसाली के अधीन समापा में, पाटलिपुत्र के अधीन कौशांबी में और सुवर्णगिरि के अधीन इसिला में महामात्य रहते थे। उज्जैन के अधीन सौराष्ट्र में एक पृथक प्रदेश या परगना था। वहां का शासक यवन तुसाष्प था।

मौर्य सम्राट की ओरसे जो राजाज्ञाएं जारी की जाती थीं, वे राज्यों के कुमार राज्यपालों के अमात्यों के नाम होती थीं। किंतु मध्यदेश (जिसकी राजधानी पाटलिपुत्र थी) पर किसी

कुमार की नियुक्ति नहीं की जाती थी। उसका शासन सीधे सम्राट के हाथों ही होता था। इसलिए इसके अंतर्गत कौशांबी के महामात्य को अशोक सीधे अपने ही आदेश देते थे।

जैसे आज केंद्रीय सरकार, फिर प्रादेशिक सरकार और प्रदेश में बहुत सारे जिले एवं तहसीलें और थाने होते हैं, वैसे ही अशोक-साम्राज्य में भी पाटलिपुत्र की केंद्रीय सरकार होती थी, फिर प्रादेशिक-सरकार होती थी, और उन प्रदेशों में अनेक मंडल थे। प्रत्येक मंडल में कई जनपद शामिल थे। शायद ये जनपद प्राचीन जनपदों के प्रतिनिधि थे। शासन व्यवस्था को अधिक सरल बनाने के लिए जनपदों के विविध भाग किए गए थे। उनको स्थानीय, द्रोणमुख, खार्वटिक, संग्रहण और ग्राम कहा जाता था। राज्य की सबसे छोटी इकाई ग्राम या गांव थी।

दस ग्रामों के समूह को संग्रहण कहते थे। बीस संग्रहणों (200 गांव) का एक खार्वटिक होता था। दो खार्वटिकों (400 ग्रामों) से एक द्रोणमुख और दो द्रोणमुखों (800 ग्रामों) से एक स्थानीय बनता था। किंतु कुछ राज्यों में आबादी घनी न होने के कारण एक स्थानीय में गांवों की संख्या कम भी होती थी।

ग्राम का अधिकारी ग्रामिक, संग्रहण का गोप और स्थानीय का स्थानिक कहलाता था। संपूर्ण जनपद के शासक को समाहर्ता (अर्थात कर इकट्ठा करने वाला क्लेक्टर) कहते थे। समाहर्त्ता के ऊपर महामात्र होते थे, जो प्रदेशों के अंतर्गत विविध मंडलों का शासन करने के लिए केंद्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किए जाते थे, इन मंडल महामात्रों के ऊपर कुमार और उसके अमात्य रहते। इन सब पर पाटलिपुत्र में मौर्य सम्राट अशोक शासन करते थे।

सम्राट की सहायता करने के लिए एक मंत्रि-परिषद होती थी। उसमें प्रधानमंत्री और पुरोहित के दो पद प्रमुख थे। चंद्रगुप्त के समय आचार्य चाणक्य मंत्री और पुरोहित दोनों पदों पर आसीन थे। अशोक के समय में राधा-गुप्त उक्त दोनों पदों पर थे। सम्राट इसी मंत्रिमंडल के साथ मिलकर प्रजा की सुविधा-असुविधा जानने के लिए गुप्तचरों को नियुक्त करते थे। विदेशों में राजदूतों को नियुक्त करना और परराष्ट्र नीति का संचालन करना उन्हीं के अधीन था। शिक्षा संबंधी कार्य उन्हीं के अधीन थे। राज्य के विभागों पर भी मंत्री और पुरोहित का निरीक्षण रहता था। सम्राट इन्हीं के परामर्श से अपने राज्य का कार्य चलाते।

इसी प्रकार प्रदेशों के कुमार भी महामात्रों की सहायता से शासन कार्य करते थे। उन महामात्रों की एक परिषद होती थी, वैसे ही जैसे आज की विधान परिषदें। इसी प्रकार केंद्र में भी केंद्रीय मंत्री परिषद होती थी।

केंद्रीय सरकार की ओर से जो राजकर्मचारी साम्राज्य में शासन के विविध पदों पर आसीन किए जाते थे, उन्हें पुरुष कहते थे। ये पुरुष उत्तम, मध्यम तथा हीन दर्जे के हुआ करते थे। जनपदों के मंडलों पर कार्य करने वाले महामात्रों और महामात्यों के अधीन जनपदों के शासक समाहर्त्ता 'उत्तम' पुरुषों की श्रेणी में होते थे। उनके अधीन युक्त आदि विभिन्न पदों के कर्मचारी 'मध्यम' तथा 'हीन' पुरुषों के वर्ग में थे।

इसके अतिरिक्त शासन व्यवस्था में सम्राट अशोक ने अनेक सुधार किए। अपनी प्रजा के भौतिक, आध्यात्मिक और धार्मिक कल्याण के हेतु 'धम्म-महामात्रों' की नियुक्ति की। यह पद बिल्कुल नया था। राज्यों के विविध संप्रदायों का सुख-साधन और उनमें दान वितरण का प्रबंध करना था। उनके कार्यों में यह भी था कि वे अधिक संतान अथवा आयु के आधार पर बंदियों को मुक्त कराएं या दंड को कम कराएं और अनावश्यक यंत्रणा को रोककर न्याय की कठोरता को घटाएं।

सम्राट अशोक ने अपने सब राजकर्मचारियों के लिये पंच-वार्षिक या त्रि-वार्षिक दौरों का नियम बनाया, जिससे वे अधिकारी देहात की प्रजा के साथ संबंध बनाए रखें और यथा सामर्थ्य लोगों के कष्टों को दूर कर सकें। अशोक ने और एक नई बात की। वह थी 'पटिवेदकों' की नियुक्ति जो उसे राज्य की सारी खबर दिया करते। उन्होंने और भी कई नए विधान बनाए। सम्राट अशोक ने अपने राजुकों को, जो लाखों लोगों पर शासन करते थे, दंड के मामले में स्वतंत्र कर दिया, ताकि वे अपने कर्तव्य विश्वास और निर्भयतापूर्वक कर सकें। उनका कार्य था दंड (सजा) और व्यवहार (कानून) में समता स्थापित करना। सम्राट ने एक और नई बात की। वे अपने राज्याभिषेक की वर्षगांठ के दिन बंदियों को मुक्त कर देते थे और प्राण दंड पाए हुए अपराधियों को तीन दिन का जीवन दान दिलाते थे।

पाटलिपुत्र की एक नगर सभा भी थी। उसकी 9 समितियां थीं। पहली समिति शिल्पसंबंधी कार्यों की देखभाल करती और श्रमिकों की मजदूरी की दर और उसके काम के समय निर्धारित करती।

दूसरी समिति विदेशियों का सत्कार करती। जो राजदूत पाटलिपुत्र आते, उनकी गतिविधियों पर कड़ी नजर रखना भी इसी समिति का कार्य था। किंतु, वह उनकी हर प्रकार की सुख-सुविधा का ख्याल करती थी।

तीसरी समिति का कार्य मर्दुमशारी करना था। वह मृत्यु और जन्म का लेखा-जोखा रखती थी।

चौथी उपसमिति क्रय-विक्रय के नियमों को निश्चित करती। चीजों के भाव घटाना-बढ़ाना इसी का काम था।

पांचवीं समिति व्यापारियों पर नजर रखती और देखती थी कि कहीं कोई नई और पुरानी वस्तुओं को मिलाकर तो नहीं बेच रहा है। हर प्रकार की मिलावट को रोकना इसका काम था।

छठी उपसमिति क्रय-विक्रय पर टैक्स लगाकर उसे वसूल करती थी। जो वस्तु जिस कीमत पर बेची जाती थी, उसका दसवां भाग कर के रूप में नगर-सभा को दिया जाता था।

उक्त समितियां सार्वजनिक हित के और भी कई कार्य करती थीं, जैसे सार्वजनिक इमारतों को देखना, मूल्यों का नियंत्रण, बाजार, बंदरगाह और पूजा स्थानों की देख-रेख।

आज के समान अशोक के शासन में भी केंद्रीय मंत्रीमंडल था। प्रत्येक मंत्री को कोई न कोई विभाग संभालना होता था। उसके अठारह तीर्थ (विभाग) थे। इनमें प्रधानमंत्री और पुरोहित भी होता था।

न्याय के लिये विविध-न्यायालय थे। सबसे छोटा न्यायालय ग्राम संस्था (ग्राम संघ) होती थी। जिसे हम ग्राम पंचायत कह सकते है। सबके ऊपर पाटलिपुत्र के धर्मस्थीय (दीवानी) और कंटकशोधक (फौजदारी) न्यायालय थे। सभी के ऊपर सम्राट थे। जो अनेक न्यायाधीशों की सहायता से किसी भी मामले का अंतिम निर्णय करने का अधिकार रखते थे।

राज्य की आय के विविध साधन थे। किसानों से उपज का एक चौथाई भाग कर के रूप में लिया जाता था। आयात माल पर कर की मात्रा बीस फीसदी थी। निर्यात माल पर भी कर लिया जाता था। सोना, चांदी, हीरा, मणि मुक्ता, लोहा और नमक आदि सब खनिज

पदार्थ राज्य की संपत्ति माने जाते थे। जो माल शहर में आता उस पर चुंगी देनी पड़ती थी। इसी प्रकार विविध व्यवसायों पर भी टैक्स लगता था।

राज्य के कर्मचारियों को उनके पद के अनुरूप वेतन दिया जाता। अधिक से अधिक वेतन की मात्रा 4000 पण थी और कम से कम 5 पण। यदि कोई राज-सेवक राज-सेवा करते समय मर जाता तो उसके पुत्र या पत्नी को उस व्यक्ति के वेतन का कुछ भाग नियमित रूप से मिलता रहता। सैनिकों और उनके अफसरों को भी वेतन दिया जाता था।

राज्य में शिक्षा पर जो व्यय होता था उसे देव पूजा कहते थे। अनेक शिक्षणालयों का सीधा संचालन राज्य की ओर से होता था। उनके शिक्षकों को राज्य की ओर से वेतन दिया जाता। वह पूजा (वेतन) कहलाता था। अन्य विद्यास्थानों को राज्य अनुदान देता था। इसी प्रकार दान, सहायता, सार्वजनिक आमोद प्रमोद और सार्वजनिक हित के कार्यों पर भी खर्च होता था।

अशोक के राज्य में एक गुप्तचर विभाग भी था। वह अमात्यों पर नजर रखता था। इसके अलावा राज्य के हर प्रकार के कर्मचारियों पर गुप्तचर निगरानी रखते थे।

लोगों की भावनाओं और राज्य के बारे में उनके विचारों का पता लगाना भी गुप्तचरों का ही काम होता था। वे विदेशों में भी जासूसी करते थे। ये गुप्तचर, विद्यार्थी, संन्यासी, बैरागी, व्यापारी, तपस्वी आदि के वेष में फिरा करते थे। उनकी गुप्त-लिपि और सांकेतिक भाषा थी, उसी के माध्यम से वे अपने कार्य की रिपोर्ट मुख्यकार्यालय तक पहुंचाते थे।

उस समय संदेश भेजने या मंगाने के लिये कबूतरों का उपयोग किया जाता। उनके गले में पत्र बांध कर उन्हें उड़ा दिया जाता। प्रशिक्षित कबूतर ठीक स्थान पर पहुंच जाते थे।

सम्राट अशोक की दृष्टि में राजा जनता का सेवक था। इसी आदर्श को सामने रखकर उन्होंने शासन किया। उन्हें इस बात की चिंता रहती कि उनकी प्रजा अधिक से अधिक सुख तथा शांति कैसे प्राप्त करे। सम्राट अशोक कलिंग के शिलालेख में कहते ही हैं—सभी व्यक्ति मेरी संतान है। जिस प्रकार मैं चाहता हूं कि मेरी संतान इस लोक और

परलोक में सुख और शांति का जीवन व्यतीत करे, उसी तरह मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि मेरी प्रजा भी सुख और समृद्ध जीवन का उपभोग करे ।

संसार के इतिहास में शायद ही किसी दूसरे ने कभी इस प्रकार की उदात्त वाणी बोली है ।



17 व्यवसाय व्यापार तथा खानपान

इस समय भी भारत में प्रधान व्यवसाय कृषि या खेती करना ही था। बरसात अधिक होने के कारण साल में दो फसलें उगाई जाती थीं। चावल, तिल, मोठ आदि वर्षा ऋतु के आरंभ में बोए जाते। वर्षा के मध्य में मूंग, उड़द आदि और बारिश खतम होते ही मसूर, जौ, गेहूं, चना, अलसी, आदि की खेती की जाती थी। इसके अलावा गन्ना, कपास और तरह-तरह की शाक सब्जियां भी उगाई जाती थीं। तरबूज और खरबूजे भी। फलों में आम, अनार, आंवला, नींबू, बेर, अंगूर, जामुन, कटहल, आदि होते थे। खेती के लिये हल और बैलों का प्रयोग होता था। सिंचाई के विविध साधन थे।

इसके अतिरिक्त लोग विभिन्न प्रकार के धंधे भी करते थे। रुई, सूत, सन एवं ऊन के अनेक विधि से कपड़े तैयार किए जाते। खानें राज्य की हुआ करती थीं पर कभी कभी ठेके पर भी दी जाती थीं। उनमें मजदूर काम करते। समुद्री जल से नमक बनाया जाता था। सोने चांदी आदि के गहने बनाए जाते थे।

वैद्य भी होते थे। वे चार प्रकार के होते थे—साधारण वैद्य, विष-वैद्य, गर्भ की बीमारियों को ठीक करने वाले और संतान-उत्पत्ति में सहायक होने वाले। इन पर राज्य का पूरा नियंत्रण रहता था।

बाजार में मांस, शराब, चमड़े, बर्तन तथा खाने पीने की चीजें एवं व्यवहार में लाने की दूसरी वस्तुएं भी बेची जाती थीं। व्यापारी कितना मुनाफा कमाएं यह राज्य की ओर से नियत किया जाता था और यह भी देखा जाता कि कहीं कोई व्यापारी माल में मिलावट तो नहीं करता। मिलावट करने वाले को दंड दिया जाता था।

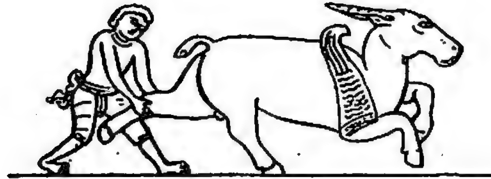
व्यापार और आवागमन थल-मार्ग और जल-मार्ग दोनों से होता था। नदी, समुद्र तथा नहरों से नौकाओं द्वारा माल ले जाया जाता। सम्राट अशोक के साम्राज्य में सड़कों का जाल सा बिछा हुआ था। पाटलिपुत्र को केंद्र बनाकर उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम चारों दिशाओं में सड़कें जाती थीं। मार्गों का प्रबंध राज्य के एक विभाग के अधीन था। प्रत्येक कोस पर पत्थर गड़े थे। चौराहों पर मार्ग दिखाने वाले चिन्ह लगे रहते थे। उत्तर-पश्चिम सीमा-प्रदेश से पाटलिपुत्र तक आने वाली सड़क की लंबाई 3,000 मील कही जाती थी।

मुद्रा या सिक्कों के नियंत्रण के लिए अलग अमात्य होता था। उसे लक्षणाध्यक्ष कहते थे। टकसाल का प्रधान अधिकारी सौवर्णिक कहलाता था। सिक्के दो प्रकार के होते थे। राजकीय कर चुकाने तथा क्रय-विक्रय में एक जिन्हें प्रामाणिक माना जाता था। दूसरे प्रकार के सिक्के साधारण थे जो व्यवहार में आते थे। इनका मूल्य प्रथम प्रकार के सिक्कों पर निर्भर करता था, इन्हें व्यावहारिक कहते थे।

उस समय मांस का बहुत चलन था, मुख्य आहार चावल और गेहूं था। वह प्रधान रूप से मांस और चावल के साथ खाया जाता था। विविध प्रकार के पकवान, कच्चा-मांस, पका हुआ मांस, चावल, दाल, रोटी आदि चीजें दुकानों में बिकती थीं।

अनेक प्रकार के मनोरंजन करने वालों के पेशे थे। नाचने, गाने एवं बजाने वाले तथा तरह-तरह की बोलियां बोलकर जीविका कमाने वाले भी हुआ करते थे।

पशुओं की विविध प्रकार की लड़ाइयां तथा मल्ल युद्ध देखने का भी जनता को बड़ा शौक था। सम्राट अशोक को ये समाज पसंद नहीं थे। उन्होंने इस प्रकार के खेल तमाशे बंद करवा दिए थे।



18 वास्तुकला और शिल्पकला का विकास

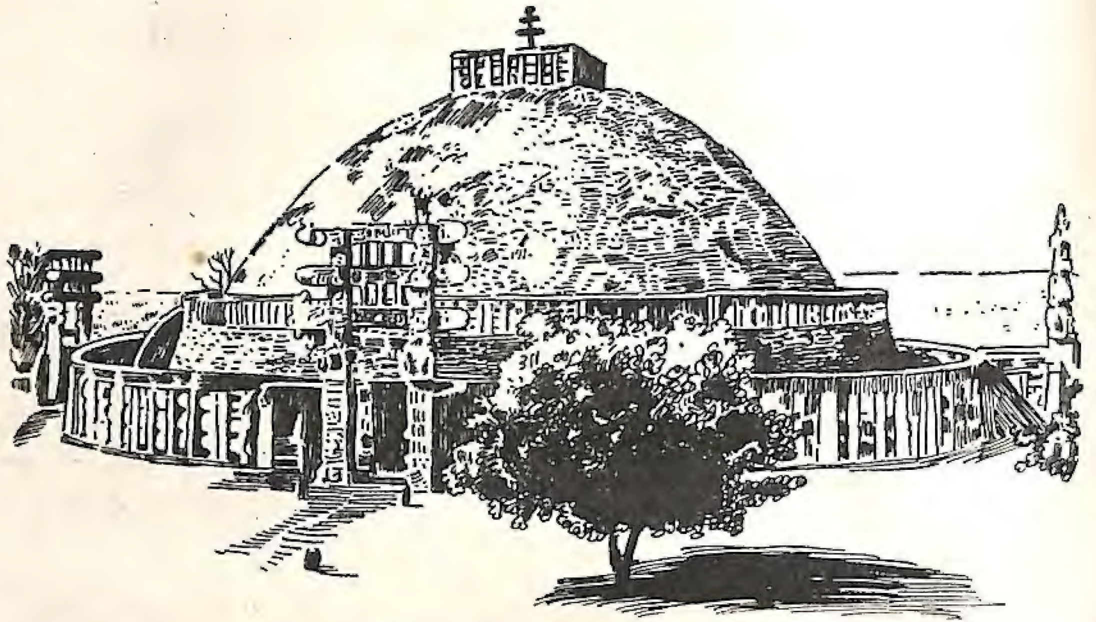
बौद्ध धर्म स्वीकार करने के बाद सम्राट अशोक ने भगवान बुद्ध के जीवन से संबंधित प्रत्येक स्थान पर विहार, स्तूप, शिलालेख और अन्य स्मारकों का निर्माण कराया और स्वयं सभी स्थानों की यात्रा भी की ।

उस समय बौद्ध भिक्षुओं की संख्या बहुत अधिक थी । उनकी सुविधा के लिए सम्राट अशोक ने विहार बनवाए । उन्हीं के साथ-साथ स्तूप भी बनवाए । उन संघारामों में भिक्षुओं के अध्ययन अध्यापन की व्यवस्था भी की । अशोक साम्राज्य का कोई भाग ऐसा नहीं बचा जहां बौद्ध विहार, स्तूप और संघाराम नहीं बनवाए गए हों। उन्हीं के साथ-साथ शिलालेखों पर अशोक की आज्ञाएं खुदवाई गई । इनके खंडहरों से आज हमें उस समय की स्थिति का ज्ञान होता है ।

भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण के पश्चात् उनकी पवित्र अस्थियों पर विभिन्न राज्यों में दस स्तूप बनवाए गए थे । अशोक ने उन में से सात स्तूपों की अस्थियां निकलवाई । कहा जाता है कि अशोक ने अपने सारे साम्राज्य में 84,000 विहार तथा उतने ही स्तूप बनवाए । सात स्तूपों से निकाली हुई अस्थियों के 84,000 हिस्से, करके उन्हें उन स्तूपों में स्थापित कराया । हो सकता है यह संख्या बढ़ा-चढ़ाकर बताई गई हो, फिर भी उसने हजारों विहार बनवाए ।

सुदूर गांधार (अफगानिस्तान) में भी विहारों की संख्या कुछ कम नहीं थी । इसी प्रकार अन्य प्रदेशों में भी बहुत से विहार थे । पाटलिपुत्र में सम्राट द्वारा बनवाए गए दो संघाराम थे । एक था अशोकाराम तथा दूसरा कुक्कुटाराम । पाटलिपुत्र के आसपास विहारों की संख्या इतनी अधिक थी कि उस सारे प्रदेश को ही 'विहार' या बिहार कहा जाने लगा ।

अपनी रानी विदिशा नगरी की 'देवी' के आग्रह पर उन्होंने सर्वप्रथम सांची में चैत्यगिरी पर्वत पर स्तूप तथा विहार बनवाए। वहां तीन बड़े स्तूप हैं। वहा उनमें से प्रधान चारों में भगवान बुद्ध की अस्थियां थीं । उसके गिर्द बनी वेष्ठनी या रेलिग बहुत सुंदर हैं । चारों ओर पत्थर के ही बने चार दरवाजे हैं। उनके ऊपर भगवान बुद्ध के जीवन की कथाएं अंकित की गई हैं । उस काल में बुद्ध की मूर्ति बनाने का रिवाज नहीं था । जहां भगवान बुद्ध को दिखाना होता वहां बोधी वृक्ष दिखाया जाता था। पक्के पत्थर पर उत्कीर्ण होने के कारण, हम उन्हें इतने लंबे अर्से के बाद भी देख रहे हैं ।



अपनी रानी विदिशा नगरी की देवी के आग्रह पर अशोक ने सर्वप्रथम सांची के चैत्यगिरि पर्वत पर स्तूप तथा विहार बनवाए।

उसी प्रधान चैत्य के पास दूसरा चैत्य है। इनमें से भगवान के प्रधान शिष्य सारिपुत्र मौद्गल्यायन की अस्थियां मिली है। उससे थोड़े अंतर पर तीसरा स्तूप है। उसमें सम्राट अशोक के गुरु मोग्गलिपुत्र तिष्य की अस्थियां थीं।

इस प्रकार के स्तूपों, विहारों तथा अन्य स्मारकों द्वारा अशोक के समय में वास्तुकला और शिल्पकला का बहुत विकास हुआ। अशोक-चक्र या धर्म-चक्र जिसका उल्लेख पहले किया गया है, भगवान बुद्ध द्वारा धर्म के आधार पर बनवाया गया था। सारनाथ के अशोक-स्तंभ पर बने सिंह और उसके निचले भाग पर बनाए गए वृषभ, हंस और अश्व उस वक्त के शिल्पकला की अति सुंदर झांकियां हैं।

सम्राट अशोक की कीर्ति, केवल उनकी धर्मविजय क कारण ही नहीं बल्कि उनके द्वारा निर्माण कराई गई कला-कृतियों के कारण भी है। कश्मीर के श्रीनगर तथा नेपाल के ललितपाटन के निर्माण का श्रेय उन्हीं को दिया जाता है। अपनी राजधानी और राजमहल के सजाने में भी उन्होंने कम उत्साह नहीं दिखाया था।

अशोक के निर्माण-कार्यों में विशिष्ट स्थान उन विशाल स्तंभों का है जो चुनार के पत्थरों से बने हुए है। वजन में वे प्रायः पचास टन के हैं। उनकी सामान्य ऊंचाई 40 से 50

फुट तक की हैं। वे एक ही पत्थर से बनाए गए हैं और नीचे से चौड़े तथा ऊपर से पतले हैं। उनके ऊपर की चमचमाती पालिश इतनी अद्भुत है कि दर्शकों को अचरज में डालती है। इस प्रकार की पालिश बाद की किसी कला–कृति से नहीं मिलती। वे शिलास्तंभ कितने सुंदर चिकने तथा चमकदार हैं।

सम्राट अशोक के युग के पहले की इमारतें लकड़ी की हुआ करती थी। वैसी ही जैसी आज बर्मा में होती हैं। अशोक के समय में पत्थरों की इमारतें बननी शुरू हुई।

स्तंभों के अलावा चट्टानों में से काटे गए सात मंदिर अशोक और उनके उत्तराधिकारियों की ही कृतियां समझे जाते हैं। उनमें से चार 'बराबर' पहाड़ी में हैं और शेष नागार्जुना पर्वत पर।

पाटलिपुत्र का राजमहल एक विशाल उद्यान में था। वहां मछलियां पकड़ने के तालाब बने थे। सजावट के लिए पेड़ लगाए गए थे। महल के खंभे सुनहरी लताओं से तथा चांदी की पत्तियों से सजाए गए थे। महल तीन मंजिल का था और लकड़ी व पत्थर का बना था।

मौर्य काल में सभी बड़े नगर ऊंची चहारदीवारी से घिरे रहते थे। उनके चारों ओर गहरी खाई खुदी होती थी जिनमें कमल के फूल खिले होते थे तथा शहर के चारों ओर रमणीय उद्यान होता था।

---

19 सम्राट अशोक का परिवार

अशोक के पिता सम्राट बिंदुसार की 16 रानियां थीं और उनसे 100 संतानें उत्पन्न हुई थीं। अशोक ने इस मामले में अपने पिता का अनुकरण नहीं किया। उनकी केवल पांच रानियां थीं।

जब वे उपराज पद ग्रहण कर उज्जैन जा रहे थे, तभी उनका विवाह विदिशा नगरी के श्रेष्ठी की पुत्री देवी के साथ हुआ। उस रानी को अशोक को महिंद और संघमित्रा, दो संतानें हुईं। देवी कभी पाटलिपुत्र नहीं गईं। वह शुरू से ही धार्मिक वृत्ति की थीं और इस में उसने अपना शेष जीवन बिताया। उसी के कहने से अशोक ने सांची-विहार का निर्माण कराया था।

2. असंघिमित्रा सम्राट की पटरानी थी। राज्याभिषेक के 26 वें वर्ष में उसका देहांत हो गया।

3. कालुवाकी या चारुबाकी उनकी एक और रानी थी। वह कुमार तीवल–तिबर की मां थी।

4. चौथी रानी का नाम पद्मावती था। उसने कुमार कुणाल को जन्म दिया। चारुबाकी और पद्मावती दोनों ही अपने पुत्रों के नाम से जानी जाती थीं। कुणाल तथा तिवर दोनों दो उपनाम थे। कुमार कुणाल का असली नाम धर्मवर्धन रखा गया था। किंतु अमात्यों ने उसकी सुंदर आंखें देखकर उनकी तुलना हिमालय में रहने वाले कुणाल पक्षी की आंखों से की, इसलिए कुमार का उपनाम कुणाल पड़ा।

जब सम्राट धर्मानुसार राज्य कर रहे थे उसी समय कुणाल का जन्म हुआ। इसीलिए उसका नाम धर्मवर्धन रखा गया था। कहा जाता है कि कुणाल के जन्म से थोड़े ही पहले सम्राट अशोक ने 84,000 धर्मराजिक विहार बनवाकर समाप्त किए थे।

तिवर कुमार की आंखें एक शिकारी की तीक्ष्ण आंखों के समान होने के कारण उसका उपनाम तिवर या अतवर (तीव्र आंखों वाला) पड़ा।

असंघिमित्रा की मृत्यु के चार साल बाद सम्राट अशोक ने तिष्यरक्षिता के साथ विवाह किया और उसे पटरानी का पद प्रदान किया। वह असंघिमित्रा के जीवन काल में उसकी प्रधान परिचारिका रह चुकी थी।

कुमार कुणाल सम्राट अशोक का सबसे प्रिय पुत्र था। सम्राट की रानी तिष्य-रक्षिता उस पर मुग्ध हो गई थी। किंतु कुणाल उसे माता समान मानता था। इससे रानी कुमार से वैर करने लगी।

सम्राट अशोक एक बार बहुत बीमार हुए। रानी तिष्यरक्षिता ने उनकी बहुत सेवा की। वे उस पर बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होंने इस खुशी में एक दिन के लिए साम्राज्य के सूत्र उसे सौंप दिए।

कुणाल से बदला लेने का अवसर अब रानी को मिल गया था। वह चूकने वाली नहीं थी। उस समय कुणाल तक्षशिला के उपराज बनकर वहां का शासन संभाल रहे थे। तिष्यरक्षिता ने राजमुद्रा के साथ आदेश जारी किया कि कुणाल को तुरंत उपराज पद से हटा दिया जाए और उसकी दोनों आंखे निकाल दी जाएं। सम्राट की आज्ञा का उल्लंघन कौन कर सकता था? राजाज्ञा का सम्मान रखने के लिए कुणाल अपने पद से हट गए और अपनी दोनों आंखे स्वयं अपने हाथों से निकाल कर दे दीं।

रानी के काले कारनामे का पता जब अशोक को लगा तो वे बड़े क्रोधित एवं दु:खी हुए। उन्होंने तिष्यरक्षिता को दंडित किया। जिस स्थान पर कुमार ने अपनी आंखें निकाली थीं, उसी जगह सम्राट ने एक बड़ा स्तूप बनवाया। यह स्तूप तक्षशिला के दक्षिण–पूर्व में था।

अशोक का एक भाई था जो उपराज पद पर नियुक्त था और जिसने बाद में बौद्ध भिक्षु की दीक्षा ली। इन्हीं के साथ सम्राट का बहनोई संघमित्रा का पति अग्निब्रह्मा भी भिक्षु बना था। उसकी दीक्षा के कुछ ही रोज पहले संघमित्रा को एक पुत्र हुआ जिसका नाम सुमन कुमार रखा गया था। बाद में महिंद, संघमित्रा और सुमन कुमार भी भिक्षु हो गए थे।

20 बौद्ध धर्म की तीसरी संगति

सम्राट अशोक से 260 वर्ष पहले भगवान् बुद्ध हुए थे । अशोक के बौद्ध धर्म स्वीकार करने के बाद से बौद्ध धर्म को राजाश्रय प्राप्त हुआ । उस समय पाटलिपुत्र के अशोकाराम में लगभग 60,000 भिक्षु रहते थे । इसी प्रकार सारे देश में भी भिक्षुओं की संख्या बढ़ गई थी । उनका सम्मान भी बढ़ा था । इस आदर सत्कार का फायदा उठाने के लिए कुछ दुष्ट लोग भी भिक्षु वेश में घुसने लगे थे ।

कुछ समय पश्चात पाटलिपुत्र के विहारों में रहने वाले धर्मिष्ठ तथा बनावटी भिक्षुओं में मतभेद बढ़ा । उस कलह को शांत न होते देख मोग्गलिपुत्र तिष्य दुःखी होकर अहोगंग पर्वत पर चले गए । भिक्षु कलह चार वर्ष तक चलता रहा । प्रति पूर्णिमा को 'विनय' का दोहराना बंद हो गया । इस विधि कर्म को रोकने के लिए सब भिक्षुओं का एकत्रित होना अनिवार्य था । झगड़े के कारण भिक्षु एक जगह नहीं बैठ सकते थे ।

इस कलह को शांत करने के लिए सम्राट अशोक ने अपने एक अमात्य को विहार भेजा । उसके बहुत समझाने पर भी भिक्षुओं का झगड़ना शांत नहीं हुआ । वे राजदंड से भी नहीं डरे । गुस्से में आकर उस अमात्य ने कई भिक्षुओं के सिर काट डाले । यह हालत देख सम्राट के छोटे भाई भिक्षु तिष्य उसके सामने गए और बोले--

"हत्यारे । यदि काटना है तो मेरा सिर काट ।"

सम्राट के भाई का सिर कोई अमात्य कैसे काट सकता था । वह हार मान कर लौट गया । उसने सारी घटना सम्राट को सुना दी ।

इस अभाग्यपूर्ण घटना को सुनकर सम्राट अशोक बहुत दुःखी हुए और साथ ही भिक्षुओं की हत्या के पाप से घबराए । वे विहार गए । उन्होंने भिक्षुओं से पूछा कि इस कुकर्म का कौन दोषी है ?

जो विद्वान नहीं थे उन्होंने कहा--"राजन् यह तुम्हारा ही दोष है ।"

दूसरों ने कहा--"राजन् तुम्हारा दोष नहीं है ।"

यह सब सुनने पर सम्राट ने पूछा–"क्या कोई ऐसा सामर्थ्यवान भिक्षु नहीं है जो एक तो मेरी दुविधा का निवारण कर सके और दूसरे धर्म का संग्रह कर इस सारे झगड़े को समाप्त कर सके ।".

भिक्षुओं ने मोग्गलिपुत्र तिष्य का नाम बताया । यह सुनकर अशोक को संतोष हुआ ।

अहोगंग पर्वत से मोग्गलिपुत्र तिष्य को बड़े आदर सत्कार के साथ बुलाया गया । सम्राट उनका स्वागत करने के लिए गंगा के घाट पर गए । पानी में उतरकर उन्होंने महास्थविर को नौका से उतारा। महास्थविर मोग्गलिपुत्र तिष्य विहार में न ठहरकर राजकीय उद्यान में ठहरे ।

दूसरे दिन अशोक ने विनम्रतापूर्वक महास्थविर मोग्गलिपुत्र तिष्य से पूछा—"अमात्य द्वारा भिक्षुओं के सिर काटे जाने पर अपराधी कौन होगा ?"

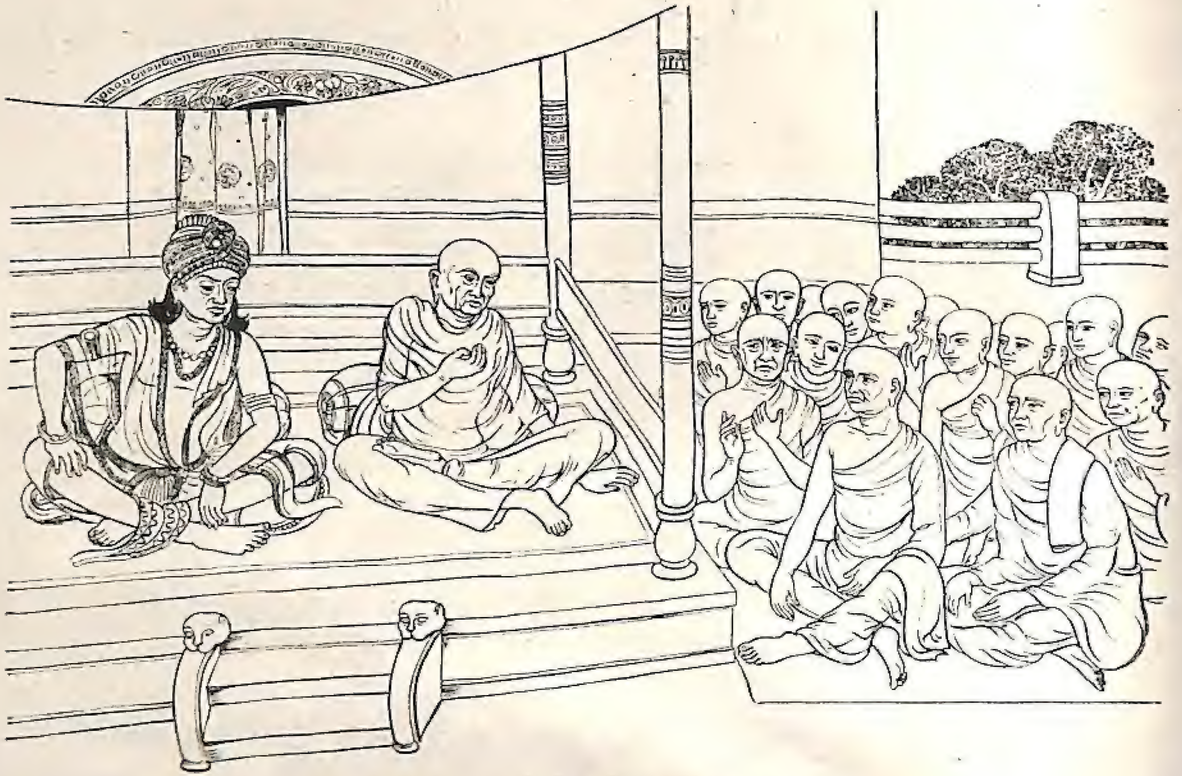
महास्थविर ने उत्तर दिया–"जब तक कर्म के साथ मन दोष-युक्त नहीं होता, तब तक कम दोष-युक्त नहीं होता । तुमने अमात्य को सिर काटने के लिए नहीं भेजा था ।"

इस के एक सप्ताह बाद सम्राट अशोक ने महास्थविर के साथ परामर्श करके अशोकाराम में एक विशाल सभा की । वहां मोग्गलिपुत्र तिष्य के साथ एक कनात के अंदर बैठ एक-एक भिक्षु को बारी बारी बुलवाया । सबसे एक ही प्रश्न पूछा गया–"भन्ते । भगवान बुद्ध का क्या वाद (मत) है?" किसी ने कुछ, किसी ने कुछ, उत्तर दिया । ऐसे सभी को राजाज्ञा से सफेद वस्त्र पहनाए गए ।

यही प्रश्न धर्मिष्ठ भिक्षुओं से पूछा गया । "सुगत (बुद्ध,) का क्या वाद है ?"

उन्होंने उत्तर दिया–"सुगत विभज्जवादी थे ।" ऐसे उत्तर देने वाले भिक्षुओं को शुद्ध माना गया । संघ को दोषमुक्त देख सम्राट अशोक अपने महल चले गए । उसके बाद भिक्षुओं ने विनय-कर्म किया ।

मोग्गलिपुत्र तिष्य ने, 1,000 विद्वान भिक्षुओं को चुना । उन्होंने अशोकाराम में सद्धम का संग्रह किया । उस समय धर्म ग्रंथ लिखे हुए नहीं थे । कोई न कोई ग्रंथ किसी न किसी भिक्षु को याद था । उन्हें ही इस संगति में शुद्धि करके दोहारा गया । इसी को तृतीय संगति कहते हैं । इसका आयोजन सम्राट अशोक की देखरेख में मोग्गलिपुत्र तिष्य ने किया था । उस समय



सम्राट अशोक ने महास्थविर के साथ परामर्श करके अशोकाराम में विशाल सभा की

वे 75 वर्ष के थे। उन्होंने इस संगति में दूसरे मतों का खंडन करने के लिए कथावस्तु नाम के ग्रंथ की रचना भी की। यह संगति अशोक के राज्यभिषेक के सत्रहवें वर्ष में हुई।

इसी प्रकार की प्रथम संगति भगवान बुद्ध के देहांत के चार मास पश्चात राजगृह में हुई थी। दूसरी संगति भगवान् के सौ साल बाद कराई गई थी।

21 विदेशों में बौद्ध धर्म का प्रचार

सम्राट अशोक के बौद्ध धर्म स्वीकार करने के बाद साधारण जनता भी उसकी ओर आकर्षित हुई। बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों पर आधारित अशोक का यह धर्म-राज्य हमेशा जनता की भलाई की बातें सोचता था।

धर्म-प्रचार के लिए राज्य के कोष से धन खर्च किया जाता। बौद्ध भिक्षुओं को भिक्षा तथा अन्य दान देने में अपनी उदारता का परिचय देने के कारण अशोक महान दानी कहलाए।

अशोक ने अपने राज्य में ही नहीं बल्कि पड़ोस के राज्यों में भी बौद्ध धर्म का संदेश पहुंचाने का प्रयत्न किया। जिस प्रकार उनके राज्य में सुख और शांति थी वैसे ही आस-पास के देशों में भी सुख शांति स्थापित हो, यह अशोक की कामना थी।

तीसरी संगति की समाप्ति पर अशोक ने मोग्गलिपुत्र तिष्य की सहायता से अपने राज्य के सुदूर प्रदेशों में तथा अन्य देशों में बौद्ध-धर्म के प्रचारक (धर्म-दूत) भेजे :

मज्झांतिक (माध्यमिक) स्थविर	कश्मीर और गांधार में
महादेव स्थविर	महिष्मंडल में
रक्षित स्थविर	बनवास में
यवन धम्मरक्षित स्थविर	अपरांत में
महरक्षित स्थविर	हिमवंत (हिमालय) प्रदेश में
महाधम्मरक्षित स्थविर	महाराष्ट्र में
सोण तथा उत्तर स्थविर	स्वर्णभूमि बर्मा में
महामंहिद और उनके छह साथी	श्री लंका में

अशोक के शिलालेखों से पता चलता है कि इनके अलावा और भी देशों में धर्म प्रचारक भजे गए थे। चंद्रगुप्त मौर्य और बिंदुसार के समय में पश्चिम के देशों के साथ राजनीतिक संबंधों को दृढ़ बनाने के लिए अशोक ने उन देशों में धर्म-प्रचारक भेजे। उन धर्म प्रचारकों के नाम ज्ञात नहीं हैं। किन्तु उनके गंतव्य स्थानों के नाम मिलते हैं। वे थे—तुरमय,

एंटिकान, मग तथा एलेक्सेंडिया। इसी प्रकार दक्षिण में भी चोल, पांड्य और तंबपर्णा राज्यों में धर्मदूत भेजे गए। कंबोज, आंध्र, पुलिंद में भी प्रचार कार्य हुआ।

जब अन्य विहारों के साथ-साथ पाटलिपुत्र का अशोकाराम बनकर तयार हो गया तो बड़े उत्सव का आयोजन कराया गया। धर्माशोक उस समय बहुत ही खुश नजर आ रहे थे। उन्होंने गुरु मोग्गलिपुत्र तिष्य से नम्रतापूर्वक पूछा—

"भदन्त ! बुद्ध धर्म में किस चीज का त्याग महान त्याग कहलाता है ?"

स्थविर ने कहा—"भगवान बुद्ध के जीवन काल में भी तुम्हारे समान त्यागी कोई नहीं था।"

सम्राट ने पुनः पूछा "क्या मेरे जैसा व्यक्ति धर्म का सगा (दायाद) कहला सकता है?"

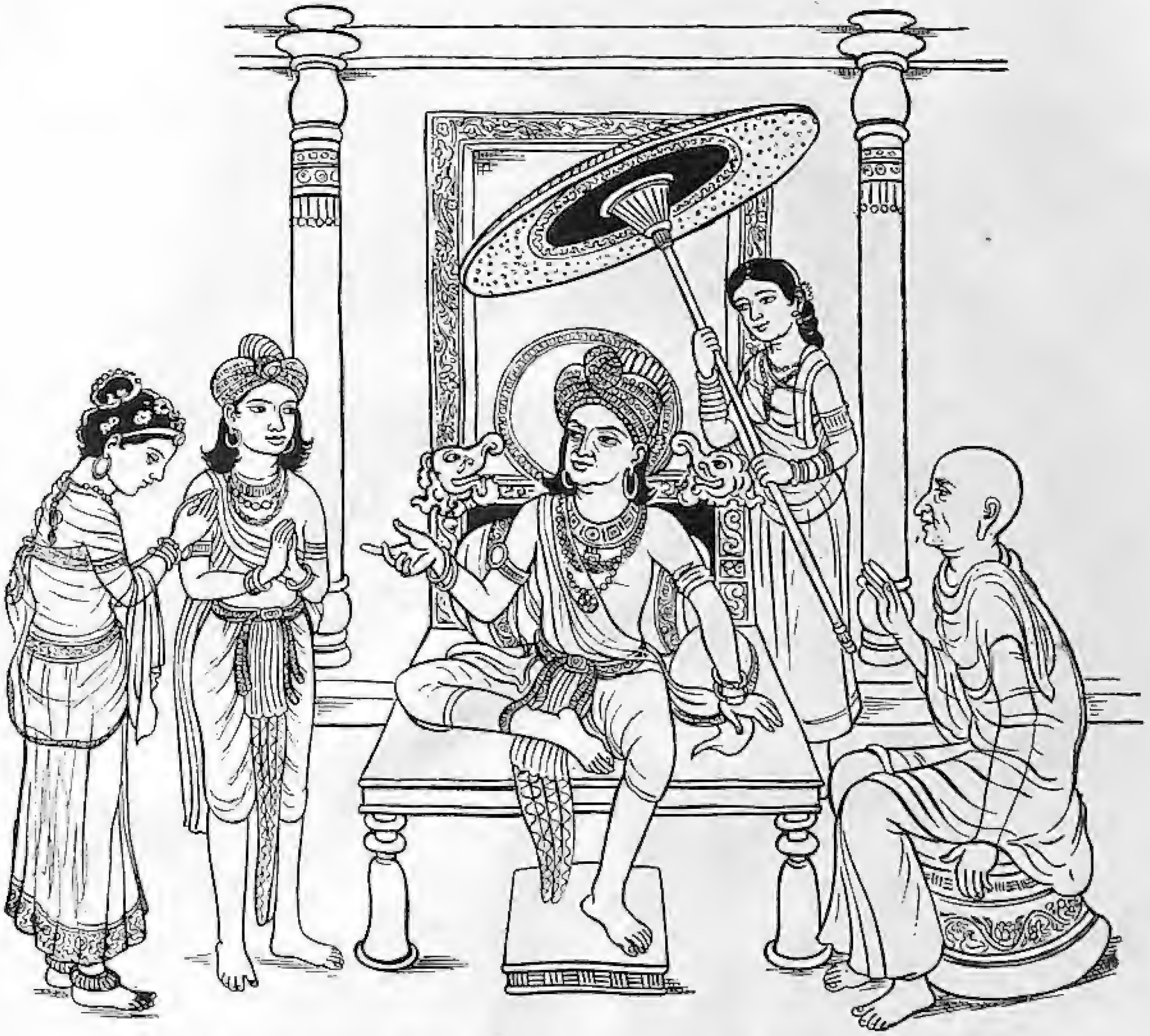
"राजन ! तुम्हारे जैसा व्यक्ति भी धर्म का दायाद नहीं हो सकता। जो अपने पुत्र या पुत्री को शुद्ध धर्म में प्रव्रजित कराता है, वही धर्म का दायाद तथा दायक दोनों कहलाता है।"

धर्म का दायाद बनने की कामना से अशोक ने पास खड़े कुमार महिंद और संघमित्रा से पूछा, "तात क्या प्रव्रज्या ग्रहण करोगे ? प्रव्रज्या महान है ।"

पिता की बात सुन उन दोनों ने कहा—"देव ! यदि आपकी आज्ञा हो, तो आज ही प्रव्रजित हो सकते हैं। हमारी प्रव्रज्या से हमें तथा आपको पुण्यलाभ होगा ।"

उपराज तिष्य की प्रव्रज्या के दिन से महिंद और पति अग्निब्रह्मा की प्रव्रज्या के समय से संघमित्रा प्रव्रजित होने का निश्चय कर चुके थे। कुमार महिंद कुछ ही दिनों उपराज बनने वाले थे। किन्तु सम्राट ने उपराज पद से प्रव्रज्या को ही महान समझा। बड़े समारोह के साथ महिंद तथा संघमित्रा की दीक्षा संपन्न हुई। उस समय महिंद 20 वर्ष के और उनकी बहन संघमित्रा 18 वर्ष की थी।

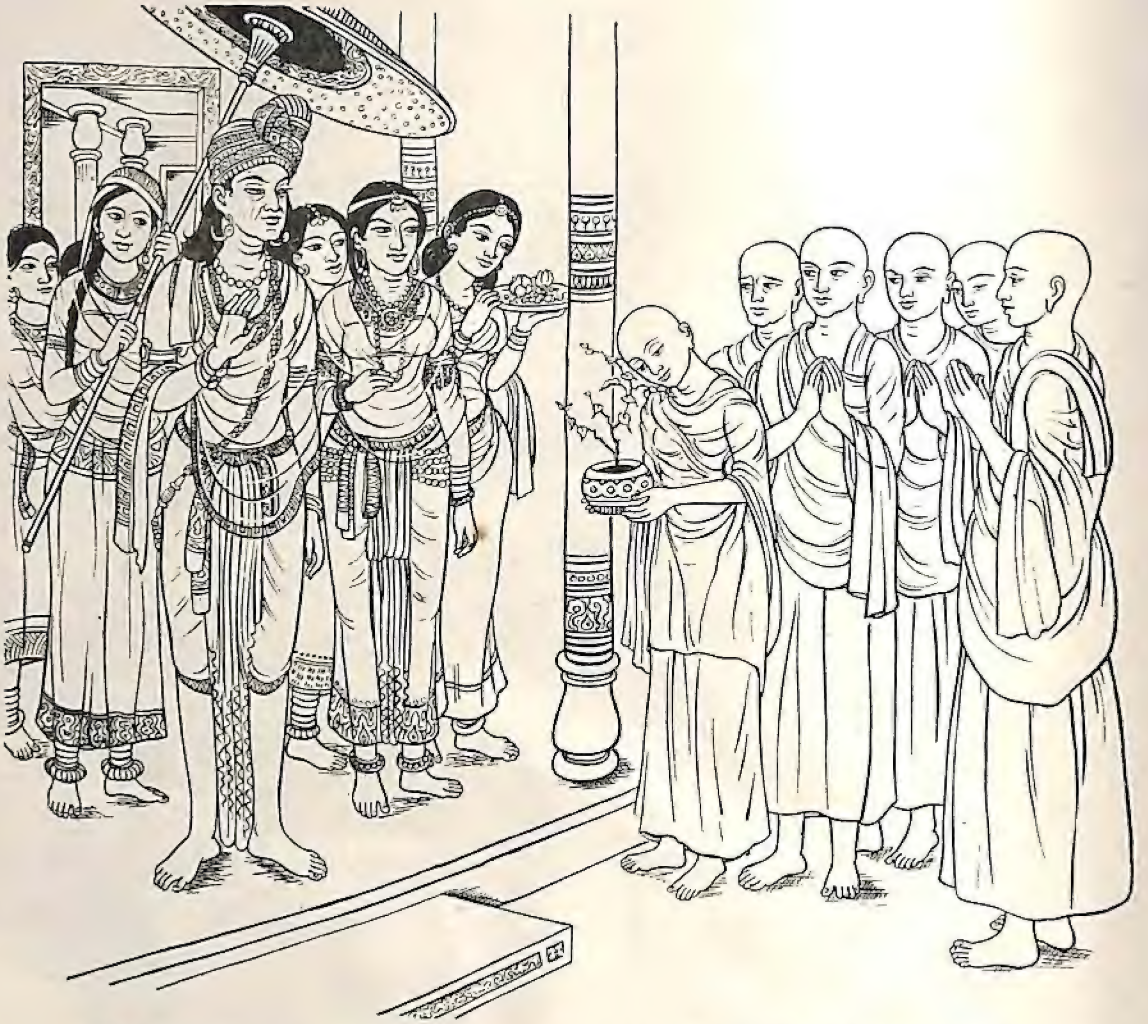
महिंद अन्य पांच भिक्षुओं के साथ धर्म प्रचारार्थ लंका द्वीप गए। उस समय वहां के नरेश देव नाम प्रिय तिष्य सम्राट अशोक के परम मित्र थे। पहले अशोक ने उन्हें राज्याभिषेक की सामग्री भेजी थी। इसी भेंट की याद में उन्होंने अपने नाम के साथ



धर्म का दायाद बनने की कामना से अशोक ने पास खडे कुमार महिंद और संघमित्रा से पूछा "तात क्या प्रव्रज्या ग्रहण करोगे ? प्रव्रज्या महान है।"

देवानांप्रिय उपनाम लगाया था। पिता की यही पूर्व मैत्री महामहिंद के धर्म प्रचार में सहायक सिद्ध हुई।

महिंद के बाद भिक्षुणी संघमित्रा भी बुद्ध गया के बोधिवृक्ष की एक शाखा लेकर श्रीलंका पहुंची। उनका लगाया हुआ वही बोधिवृक्ष आज भी लंका के अनुराधपुर नगर में विद्यमान हैं। वहां महिंद ने भिक्षु-संघ तथा संघमित्रा ने भिक्षुणी-संघ की स्थापना की। तभी से उस देश में बौद्ध धर्म की स्थापना हुई। महिंद तथा संघमित्रा दोनों में से कोई भी पुनः भारत लौटकर



महिंद के बाद भिक्षुणी संघमित्रा भी बुद्ध गया के बोधिवृक्ष की एक शाखा लेकर लंका पहुंची

नहीं आए। वे ही नहीं बल्कि जितने भी धर्म दूत बनकर विदेशों में गए थे, वे वहीं के होकर रहे और उस देश की जनता के साथ घुलमिल गए।

आज भी महामहिंद का लंका-आगमन का दिन प्रतिवर्ष बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। श्री लंका के लोग उन्हें द्वितीय बुद्ध अनबुद्ध के नाम से याद करते हैं

22 अशोक और बौद्ध धर्म

हम पढ़ चुके है कि बौद्ध धर्म स्वीकार करने से पहले अशोक बड़े क्रूर स्वभाव के थे। उन्होंने एक बार क्रोध में आकर कई अमात्यों को मार डाला था। उनकी कुरूपता पर अंतःपुर की स्त्रियां हंसा करती थीं। नाम में समानता होने के कारण अशोक अशोक-वृक्ष को बहुत चाहते थे। एक बार राजमहल की किसी स्त्री ने अशोक के पेड़ का पत्ता तोड़ लिया। केवल इसी बात पर अशोक ने कई स्त्रियों को मौत के घाट उतार दिया था। इसीलिए उन्हें चंडाशोक कहा जाता था।

कलिंग युद्ध में घायलों की चीत्कार तथा हत्याकांड ने उनके हृदय में उथल-पुथल मचा दी। इससे उनके विचारों में बड़ा परिवर्तन हुआ।

बौद्ध धर्म अपनाने पर सम्राट अशोक ने निश्चय किया कि उनका प्रमुख कर्तव्य संसार में सुख और शांति की स्थापना करना है। वे बौद्ध धर्म के प्रचार एवं प्रसार में रत हो गए। उन्होंने साधारण जनता में नैतिकता और आध्यामिकता का प्रचार करने का विशेष प्रयत्न किया।

अशोक बौद्ध धर्म के कट्टर अनुयायी थे। शिलालेखों में उन्होंने इस बात को स्पष्ट स्वीकार किया हैं, कि उनका विश्वास बुद्ध, धर्म तथा संघ में हैं। इसी भावना से उन्होंने सारे बौद्ध तीर्थों की यात्रा की। हजारों विहार, स्तूप और स्मारक खड़े किए।

अशोक ने बौद्ध धर्म को परिशुद्ध रखने के विचार से संघ का निरीक्षण करने के लिए कुछ विशेष पदाधिकारियों की नियुक्ति भी की थी।

सारनाथ के स्तंभ लेख से ज्ञात होता है कि वे बौद्ध धर्म के संरक्षक थे। उन्होंने संघ में भेद डालने वाले भिक्षुओं को दंड देने का विधान किया। वे कहते हैं—"जो भिक्षु या भिक्षुणी संघ में फूट डालेंगे उससे उनका चीवर छीन लिया जाएगा और सफेद वस्त्र देकर उन्हें संघ से बाहर कर दिया जाएगा।"

जो कार्य भगवान बुद्ध ने अपने जीवन-काल में बौद्ध धर्म की स्थापना के लिए किया वैसा ही कार्य सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए किया।

सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म सिद्धांतों को सर्वसाधारण जनता की समझ में आने वाली भाषा में अपने शिलालेखों पर अंकित किया। इतना ही नहीं बल्कि विदेशों में धर्म प्रचारक

भेजकर, भारत के बौद्ध-धर्म को एक विश्व का धर्म स्वरूप प्रदान किया । इस कार्य में सम्राट अशोक ने अपने पुत्र तथा पुत्री को समर्पित कर दिया था । इन्हीं सब कारणों में आज सारे संसार में उन्हें 'महान अशोक' के नाम से याद किया जाता है ।

बौद्ध धर्म में अशोक को असीम श्रद्धा थी । उसके लिए उन्हें जो जो करना था, वह सब किया । किंतु उन्होंने अपने व्यक्तिगत धर्म को जनता पर जबरदस्ती लादने का प्रयत्न नहीं किया । बौद्ध धर्म के प्रचार में उन्होंने शक्ति या तलवार का उपयोग नहीं किया ।

बौद्ध धर्म की जो शिक्षाएं सभी धर्मों के लोगों के ग्रहण करने योग्य थीं, वे दीक्षाएं उन्होंने अपने शिलालेखों पर खुदवाईं । उदाहरण के लिए माता-पिता, गुरु तथा वृक्षों का आदर, सम्मान एवं सेवा करना । सेवकों तथा श्रमिकों के साथ समानता का व्यवहार रखना । मनुष्यों को पाप नहीं करना चाहिए आदि ।

अशोक का हृदय विशाल, दयालु एवं दानी था । उन्होंने बौद्ध धर्म के साथ-साथ अन्य धर्मावलंबियों को भी उदारतापूर्वक दान दिया ।

उन्होंने लोक हित या परोपकार के कार्यों पर विशेष ध्यान दिया । इससे बौद्ध धर्म लोकप्रिय हुआ । उन्होंने मनुष्यों के लिए ही नहीं, पशुओं के लिए भी दवाखाने खुलवाए । दवाखानों में निर्धन आदमियों को मुफ्त दवा दी जाती थी । औषधियाँ बनाने के लिए बाग लगाए गए थे ।

स्वयं सम्राट अशोक बौद्ध धर्म के सबसे बड़े प्रतीक थे । उनके आदर्श जीवन से उनकी प्रजा ने शिक्षा ग्रहण की । वे जैसा आचरण करते थे, वैसे ही आचरण की अपनी जनता से अपेक्षा रखते थे । जनता ने उनका अनुसरण किया था । थोड़े में कहा जाए तो कलिंग युद्ध के उपरांत अशोक का संपूर्ण जीवन ही धर्ममय हो गया था ।

यदि सम्राट अशोक नहीं हुए होते तो आज जिस मात्रा में बौद्ध धर्म संसार में फैला हुआ है उतना न फैला होता । अशोक और बौद्ध धर्म दोनों एक दूसरे पर आधारित रहे हैं । जहां धर्माशोक का नाम लिया जाता हैं वहां बौद्ध धर्म का नाम अपने आप आ जाता है। और जहां बौद्ध धर्म का नाम लिया जाता है वहां धर्माशोक का नाम अपने आप आ जाता है । दोनों एक दूसरे के पूरक हैं ।

23 देवताओं के प्रिय 'प्रियदर्शी अशोक'

अंग्रेज इतिहास लेखक श्री एच० जी० वेल्स ने अपने 'संसार के इतिहास की रूपरेखा' नाम की पुस्तक में लिखा है—"अशोक का नाम बड़े-बड़े और विभिन्न उपाधियों वाले सहस्त्रों शासकों में, जिनका वर्णन इतिहास में आता है, सितारे की तरह चमकता है । वोल्गा से जापान तक आज भी उसका नाम अत्यंत सम्मान के साथ लिया जाता है ।"

दूसरे विद्वानों का विचार है कि मौर्य-वंश का तृतीय सम्राट न केवल भारतीय राजाओं में उच्च था बल्कि इतिहास के महान व्यक्तियों में से एक था ।

अशोक संसार के इतिहास के एक आदर्श, महान तथा उदार व्यक्तित्व वाले सम्राट हुए हैं । विश्व इतिहास के मंच पर ऐसा कोई भी सम्राट नहीं हुआ जिसने उन आदर्शों का पालन किया हो जिनका अशोक ने किया है । इसीलिए उनकी तुलना में किसी भी सम्राट की गणना नहीं की जा सकती । वास्तव में वे अद्वितीय सम्राट हुए हैं ।

युवावस्था में उनका अधिकांश समय शिकार खेलनें में तथा आमोद-प्रमोद में ही गुजरता था । वे साम्राज्यवाद के पक्के समर्थक थ और दृढ़ संकल्पी भी । वे कुशल सैनिक थे और उनमें योग्य सेनानायक के गुण मौजूद थे ।

लेकिन कलिंग विजय के बाद उनका ध्यान सदा प्रजा के हित में ही लगा । उनका प्रजा के साथ पिता-पुत्र का सा संबंध था । वे कहते हैं, "मैं खाता होऊँ, अंतःपुर में होऊँ या शयनागर में, प्रतिवेदक लोग प्रजा कार्य से मुझे सर्वत्र सूचित करें ।" उनके संकल्प दृढ़ होते थे और उनकी पूर्ति के लिए उन्होंने अनवरत परिश्रम किया था ।

जो काम महान् उपदेशक भी नहीं कर सकते, वे काम सम्राट अशोक ने किए । वे एक महान् उपदेशक एवं शिक्षक थे । वे साधारण जनता में कभी वेश बदल कर तो कभी सम्राट के रूप में घूमते । लोगों को नैतिकता तथा बौद्धिकता सिखाने के लिए धर्म-चर्चा करते थे ।

सम्राट अशोक उच्च कोटि के शासक भी थे । उन्होंने शासन पद्धति में बहुत से नए परिवर्तन किए । उन्होंने राजकर्मचारियों को आदेश दिया था कि वे अपने आप को जनता का सेवक मानकर अपने कर्तव्यों का उचित रूप से पालन करें । उनके शासन-काल में पूर्ण शांति थी ।

अशोक महान राष्ट्र निर्माता थे । उन्होंने भारत को एक महान् राष्ट्र के रूप में संसार के सामने ला खड़ा किया । उन्होंने अपने लेखों में पालि भाषा का प्रयोग किया जो सर्व-साधारण

की भाषा थी। इसके द्वारा उन्होंने संपूर्ण साम्राज्य में एकता स्थापित की। उनका शासन-विधान समस्त देश के लिए समान था।

अशोक के दादा चंद्रगुप्त मौर्य सम्राट थे। उनके पिता बिंदुसार भी सम्राट थे और स्वयं अशोक भी एक सम्राट थे। किंतु उन्होंने अपने आप को कभी भी 'सम्राट' नहीं कहा और न है होंने अपने शिलालेखों में ही इसको स्थान दिया। अन्य कोई छोटे-छोटे राजाओं ने अपने ें के साथ बड़े-बड़े, लंबे चौड़े विशेषण लगवाए, जैसे राजाधिराज आदि।

अशोक का नाम और पद शिलालेखों में देखने को मिलता है। कभी-कभी थोड़े में ही 'राजा प्रियदर्शी' लिखा मिलता है। मास्की मिले शिलालेख में देवानाम् प्रिय अशोक पाया गया है। बौद्ध साहित्य में उन्हें धर्मराज धर्माशोक कहा गया है। देवानाम् प्रिय प्रियदर्शी उनका राजकीय पद था और अशो नका नाम।

कहा जाता है कि सम्राट अशोक ने अंतिम दिनों में ब. द्ध भिक्षु की दीक्षा ग्रहण कर पूर्ण रूप से धार्मिक जीवन व्यतीत किया।

232 ई०पू० में इस महान सम्राट का देहांत हो गया। तत्पश्चात उनका पुत्र कुणाल मौर्य साम्राज्य का स्वामी हुआ।



